महावीर-निर्वाण का ढाई हजारवाँ मंगल-वर्ष

रत्नत्रय-मंगल

इस जगत की समस्त दुर्लभ वस्तुओं में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सबसे दुर्लभ हैं—ऐसा जानकर हे भव्य जीवों! तुम इन तीनों का महान आदर करो। (-श्री कार्तिकस्वामी)

★ ★ ★

रे जीव! जिनवरदेव कहते हैं कि रत्नत्रय की अप्राप्ति से तूने दीर्घसंसार में भव-भ्रमण किया, अतः अब रत्नत्रय का आचरण कर।

(श्री कुन्दकुन्दस्वामी)

★ ★ ★

रत्नत्रय की आराधना करनेवाले जीव को आराधक जानना; और उसकी आराधना के विधान का फल केवलज्ञान है। (मोक्षप्राभृत)

★ ★ ★

रत्नत्रय की जो आराधना है, वह आत्मा की ही आराधना है।

तंत्री-**पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार** * संपादक : **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन**
वीर सं० 2500 द्वितीय भाद्रपद (चन्दा : चार रुपये) वर्ष 30 : अंक 6

[किसी विधि किये करम चकचूर-इसका उत्तर पढ़िये। कवि-नयनानंद]

जिस विधि कीने करम चकचूर। सो विधि बतलाऊँ...
तेरा भरम मिटाऊँ वीरा, जिस विधि कीने करम चकचूर।
सुनो संत अर्हत पंथ जन, स्वपर दया जिस घट भरपूर।
त्याग प्रपंच निरीह करै तप, ते नर जीते कर्म करूर॥१॥

तोड़े क्रोध निठुरता अध नग, कपट क्रूर सिर डारी धूर।
असत-अंग कर भंग बतावे, ते नर जीते कर्म करूर॥२॥

लोभ कंदरा के मुख में भर, काठ असंजम लाय जरूर।
विषय कुशील कुलाचल फूंके, ते नर जीते करम करूर॥३॥

परम क्षमा मृदुभाव प्रकाशे, सरलवृत्ति निरवांछक पूर।
धर संजम तप त्याग जगत सब, ध्यावैं सतचित केवलनूर॥४॥

यह शिवपंथ सनातन संतो, सादि अनादि अटल मशहूर।
या मारग 'नैनानंद' हु पायो, इस विधि जीते कर्म करूर॥५॥

(इस काव्य में दस धर्म का कथन है)

वीर सं. 2500
भाद्रपद
अक्टूबर 1974

आत्मधर्म

वर्ष 30 वाँ
अंक 6
[354]

जैन-जवानों जागो वीर के पुत्रों जागो

बहादुर जैन जवानों, जागो! प्यारे वीर पुत्रों, तुम जागो! अपने आत्मा को पहचानकर वीरमार्ग में प्रवेश करो... मोक्ष का मार्ग खोल दो, और आगे कदम बढ़ाओ प्रभु के मार्ग में।

अहा, हमारे महावीर भगवान के मोक्षगमन का २५०० वर्षीय यह महान उत्सव हम मना रहे हैं। ऐसा सुंदर जैनमार्ग, और ऐसा आनंद का अवसर—ऐसे समय में तुम्हारे जैसे शूरवीर युवान लोग यदि ऐसा कहोगे कि 'हम आत्मा को नहीं पहचान सकते'—अरे, तब फिर जगत में कौन पहचानेंगे आत्मा को? ओ जवांमर्द जवानों! ओ बहादुर वीरांगनाओं! विश्व में अजोड़ ऐसे वीरमार्ग को पाकर तुम्हें ही आत्मा को पहचानना है, और भव-दुःख से छूटना है। ओ वीर के सुपुत्रों! इस निर्वाण महोत्सव में वीरनाथ भगवान के प्रति श्रद्धांजलि देते हुए दृढ़ निश्चय करना कि हे वीरनाथ देव! हम आपके संतान कोई निर्माल्य या पामर नहीं हैं, हम तो वीर के संतान हैं; वीरतापूर्वक हम भी आत्मा की पहिचान करके आपके मार्ग में आ रहे हैं, एवं समस्त जैनयुवानों इसी मार्ग पर आयेंगे ही आयेंगे। हमारे लिये आपके मार्ग को छोड़कर अन्य कोई मार्ग नहीं है। प्रभो! हमारे जैसे वीर युवान ही आत्मसाधना के द्वारा आपके मार्ग को भरतक्षेत्र में आगे साढ़े अठारह हजार (१८,५००) वर्षों तक अखंड धारा से टिकायेंगे। आपके मोक्ष पधारने के बाद आज ढाई हजार वर्ष के बीत जाने पर भी आपका शासन जीवंत है—तो हमारे जैसे जैनयुवानों के बिना, अन्य कौन है जो इस

मार्ग पर चलेगा ? आपके वीतराग मार्ग पर चलना कोई साधारण लोग का कम नहीं है। प्रभो! हम ही आपके उत्तराधिकारी हैं, और हम आपके मार्ग में आत्मसाधना करेंगे-करेंगे और करेंगे ही, यह हमारी प्रतिज्ञा है।

'हम हैं जिनवर के संतान... चलेंगे जिनवर पंथ-महान।'

वाह! बहादुर युवान बंधुओं-बहनों! धन्य है तुम्हारी वीरता को!
तुम्हारी प्रतिज्ञा शीघ्र पूर्ण करके वीर शासन की शोभा बढ़ाओ।

—oo—

वीतरागता
यही
सत्य क्षमा।

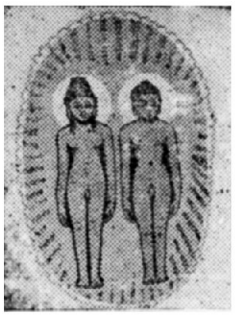

साधर्मी के प्रति
परम
वात्सल्य हो।

ऋषभ-महावीर

ढाई हजार वर्ष पूर्व, हमारे शासननायक वीरनाथ भगवान रत्नत्रयरूप वीतराग-मोक्षमार्ग हमें दिखाकर परम निर्वाणरूप मोक्षपद को प्राप्त हुए। प्रभु ने जो सुंदर मार्ग दिखाया, वह मार्ग आज भी श्रीगुरुप्रताप से हमें मिला है। यह मार्ग हमें क्रोधादि दु:खभावों से छुड़ाकर, चैतन्य की अपूर्व शान्ति का स्वाद चखाता है। यही अपूर्व क्षमाधर्म की आराधना है।

—ऐसी आराधना में हम एक-दूसरे को आनंदपूर्वक साथ दें,
ऐसी उत्तम भावनासहित क्षमा... क्षमा!

सर्वज्ञ महावीर के अतीन्द्रियज्ञान की दिव्य महिमा

[सर्वज्ञ का निर्णय धर्म का मूल है।]

हे साधर्मी! हे उत्साही मुमुक्षु! भगवान महावीर के ढाई हजारवर्षीय निर्वाणमहोत्सव के इस मंगल अवसर में सर्वज्ञमहावीर के चेतनमयी आत्मा को द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से यथार्थ पहिचानो, उनके जैसा चेतनस्वभावी अपने आत्मा को पहिचानो, और उसके सम्यक् अनुभव से सम्यक्त्व प्रगट करके वीरनाथ के मोक्षमार्ग में प्रवेश कर लो। इसप्रकार महा आनंदपूर्वक मोक्ष का मंगल उत्सव मनाओ।

सर्वज्ञता के गंभीर रहस्यों को खोलकर, उसके निर्णय का बहुत महत्त्व दिखलाते हुए श्री कानजीस्वामी कहते हैं कि—

अतीन्द्रिय महा आनंद का अविनाभावी ऐसा अतीन्द्रिय दिव्य ज्ञान, वह जीव का स्वभाव है, उसकी परम महिमा आचार्यदेव ने प्रवचनसार में प्रसिद्ध की है, और उसको इष्ट अभिनंदनीय-प्रार्थनीय कहा है।

— ऐसे अतीन्द्रियज्ञान का स्वरूप निश्चित करने के लिये जीव का उपयोग जब उन्मुख होता है, तब वह राग से हटकर अंदर अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव में तन्मय हो जाता है। जिसका उपयोग राग में तन्मय हो वह जीव, राग से पार अतीन्द्रियज्ञान का सच्चा स्वीकार नहीं कर सकता; अतः अतीन्द्रिय ऐसे केवलज्ञान का निर्णय अर्थात् स्वीकार अतीन्द्रियभावरूप सम्यक्त्व से ही होता है, और उसके साथ अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद भी आता है।

इसप्रकार सर्वज्ञ का निर्णय जैनधर्म का मूल है।

अहो, क्षायिकज्ञान का परम माहात्म्य सर्वोत्कृष्ट है; उसकी ताकत का क्या कहना? काल या क्षेत्र का अंतर उसको बाधा नहीं कर सकता। अनंत काल पहले की या अनंत काल बाद की जो पर्यायें इस समय विद्यमान नहीं है, वर्तमान में जिनका अस्तित्व ही नहीं है, उन्हें भी ज्ञान अपनी दिव्य ताकत के बल से वर्तमान में ज्ञेय बना लेता है; जैसे वर्तमान-विद्यमान पर्याय

को स्पष्ट-प्रत्यक्ष जानता है, वैसे ही अवर्तमान (-जो इससमय विद्यमान नहीं है ऐसे) पर्यायों को भी वह ज्ञान वर्तमान में स्पष्ट-प्रत्यक्ष जान लेता है।—अहो, ऐसी अचिंत्य ताकतवाले ज्ञान का निर्णय करते ही राग और ज्ञान का अत्यंत भेदज्ञान हो जाता है।

यदि राग के कोई भी अंश को ज्ञान में मिलाया जाए तो ज्ञान की अतीन्द्रिय दिव्य ताकत नहीं रहती। सर्वज्ञता को प्राप्त ज्ञान में पूर्ण आनंद है परंतु राग का कोई अंश नहीं है। ऐसे वीतरागी ज्ञान का स्वीकार करनेवाला श्रुतज्ञान भी राग से भिन्न होकर केवलज्ञान को बुला रहा है; 'ओ केवलज्ञान! आओ... आओ!' और, स्वानुभव के बल से केवलज्ञान भी अंतर से प्रत्युत्तर दे रहा है कि 'आ रहा हूँ... आ रहा हूँ... आ रहा हूँ।'

देखो तो सही, ज्ञान का अद्भुतस्वभाव!

ज्ञान की वृद्धि होते-होते पूर्ण होने पर राग का तो सर्वथा अभाव हो जाता है; किंतु राग में ऐसी ताकत नहीं है कि राग बढ़ते-बढ़ते ज्ञान का सर्वथा अभाव हो जाए और आत्मा जड़ हो जाए। राग के साथ भी चेतनपना तो आत्मा में सदैव रहता ही है।

अरे जीव! तेरे चेतनस्वभाव को देख! ऐसे चेतनस्वभाव का राग के साथ मिलान नहीं हो सकता। ऐसे ज्ञान का पूर्ण परिणमन होने पर, अतीन्द्रिय महान आनंद के स्वाद सहित जो केवलज्ञान प्रगट हुआ, उसका सर्वोत्कृष्ट माहात्म्य कुन्दकुन्दस्वामी ने इतना अद्भुत दिखाया है कि—वह जिसके लक्ष में आ जाये, उसे राग के साथ एकत्वबुद्धि कभी नहीं रहती, उसे तो राग से भिन्न चैतन्य का अनुभव होकर निश्चय सम्यग्दर्शन हो जाता है।—यह धर्मी के अनुभव की बात है। मिथ्यादृष्टि के अज्ञान में सर्वज्ञता की दिव्य महिमा नहीं समा सकती; अतः समंतभद्रस्वामी ने कहा है कि हे सर्वत्र महावीरदेव! मिथ्यादृष्टि का चित्त आपकी पूजा नहीं कर सकता, वह आपको पहचान ही नहीं सकता, तब पूजा कैसे करे? सर्वज्ञरूप से आपको पहचान कर सम्यग्दृष्टि ही आपकी पूजा-आराधना कर सकता है। अरे, रागरहित सर्वज्ञता का पूजन-आराधन राग के द्वारा कैसे हो सकता है? चैतन्यचमत्कार जिस ज्ञान में आया, वह ज्ञानपर्याय तो राग से पृथक् हो गई है। वाह! केवलज्ञान की ताकत का तो क्या कहना? —अपितु उस केवलज्ञान का स्वीकार करनेवाले मति-श्रुतज्ञान की ताकत भी राग से पार अतीन्द्रिय सामर्थ्यवाली है, संपूर्ण चैतन्यस्वभाव का उसने स्वीकार किया है, और केवली

भगवान के महान अतीन्द्रिय सुख का नमूना चाख लिया है; अब आगे बढ़कर अल्पकाल में वह केवलज्ञानरूप हो जायेगा।

जो जानता अर्हंत के गुण-द्रव्य अरु पर्याय को,
सो जानता निजात्म को, तस मोह होता क्षय अहो!

अतीव प्रमोदभाव से प्रवचनकार कहते हैं कि यह तो कुन्दकुन्दस्वामी के अनुभवसिद्ध मंत्र हैं। चेतनभावरूप से अरिहंतदेव के द्रव्य-गुण-पर्याय को जो जीव जानता है, वह जीव, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में जो चेतनभाव है, उसको राग से पृथक् जानकर, चेतनभावरूप समस्त गुण-पर्यायों को अपने चैतन्यभाव में ही अभेद-अंतर्लीन करके, एक अखंडित चैतन्यभावरूप से अपने आत्मा को देखता है, और तुरंत ही उसके मोह का क्षय होकर अपूर्व सम्यग्दर्शन होता है।—यह सम्यग्दर्शन की रीति है। देखो, धर्मी-सम्यग्दृष्टि चेतनपर्याय को द्रव्य से दूर नहीं करते परंतु द्रव्य में ही अंतर्लीन (अभेद) करके अनुभव करते हैं। चेतनरूप द्रव्य-गुण-पर्याय की अभेद अनुभूति ही शुद्धनय है, और वही सम्यग्दर्शन है; उसमें भेद कल्पना करना, सो व्यवहार है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। अभेदरूप भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शनादि होते हैं। इसी विधि से सभी अर्हंतदेवों ने स्वयं मोह का नाश किया है, और जगत के जीवों के लिये भी सम्यग्दर्शन की यही रीत दिखलायी है, अन्य कोई रीत नहीं है।

अत: हे उल्लासमान मुमुक्षुओं! भगवान महावीर के २५०० वर्षीय निर्वाण महोत्सव के इस मंगल प्रसंग में सर्वज्ञ महावीर के चेतनमयी आत्मा को द्रव्य-गुण-पर्याय से सही रूप पहचानो, उनके जैसा चेतनस्वभावी आत्मा का निश्चय करो, और उसके अनुभव से सम्यक्त्व प्रगट करके वीरनाथ के मोक्षमार्ग में प्रवेश कर लो।—यही मोक्ष का आनंदोत्सव है।

जो जानते महावीर को चेतनमयी शुद्ध भाव से।
वे जानते निजात्म को सम्यक्त्व ले आनंद से॥

जय महावीर

हे मुमुक्षु! प्रथम यह जान लो कि- तुम्हारे संसार-मोक्ष का कर्ता कौन है ?

(तुम स्वयं ? या अन्य कोई ?)

तुम्हारे संसार के या मोक्ष के कर्ता अकेले तुम ही हो;
संसार में या मोक्ष में तुम्हारा कर्ता अन्य कोई नहीं है।

यह बात जैनशासन में सर्वत्र प्रसिद्ध है कि अरिहंत भगवान ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को ही मोक्षमार्ग कहा है।

☆ अब, आत्मा स्वयं जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रभावरूप परिणमता है, तब वह अपने मोक्ष का कर्ता होता है।

☆ और जब सम्यक्त्वादिरूप परिणमित न होकर, अज्ञान से वह मिथ्यात्वादि भावरूप परिणमित होता है, तब वह अपने संसार का कर्ता है।

—संसार एवं मोक्ष दोनों में अपने ऐसे स्वाधीन कर्तृत्व को जाननेवाला जीव, पर के साथ एकत्व का अध्यास छोड़कर, अपने आत्मा में एकत्व का अनुभव करता हुआ, स्वाधीनरूप से अपने मोक्ष का ही कर्ता होता है, और संसार के कर्तृत्व को छोड़ देता है। श्री प्रवचनसार गाथा १२६ में यह बहुत अच्छी बात आचार्यदेव ने समझायी है। जिसने मोक्षमार्ग में प्रवेश किया है, ऐसा मुमुक्षु आत्मा जानता है कि—

☆ जब मैं संसारी था, तब भी सचमुच मेरा कोई भी न था, तब भी मैं अकेला ही मेरे मलिन चैतन्यभाव के द्वारा स्वयं कर्ता-साधनादिरूप होकर, स्वभावसुख से विपरीत ऐसे दुःखफल को उत्पन्न करता था; उसमें अन्य कोई मेरा कर्ता या रिश्तेदार नहीं था।

☆ और अब, साधकदशा में जिसको सुविशुद्ध सहज स्वपरिणति प्रगट हुई है—ऐसा मैं सर्वथा मुमुखु हूँ; अब यह मुमुक्षु-साधक-ज्ञानदशा में मैं अकेला ही मेरे विशुद्ध-चैतन्यभाव के द्वारा स्वयं कर्ता-साधनादिरूप होकर, मैं अकेला ही मेरे स्वभाव से

अनाकुल सुखफल को उत्पन्न करता हूँ।

पहले मैं अकेला ही दु:खरूप परिणमित होता था; और अब भी मैं अकेला ही मेरे स्वभाव से सुखरूप परिणमन कर रहा हूँ।

— इसप्रकार बंधमार्ग में तथा मोक्षमार्ग में आत्मा अकेला ही है। आत्मा के ऐसे एकत्व को जानकर, अपने एकत्व की भावना में तत्पर जीव को, परद्रव्य का जरा भी संपर्क न रहने से शुद्धता होती है; तथा कर्ता-कर्म-साधन-फल ये समस्त भावों को एक अभेद आत्मरूप से ही भान से (अनुभव करने से), वह पर्यायों के द्वारा खंडित नहीं होता। अत: सुविशुद्ध होता है। इसप्रकार उसने अपने आत्मा को पर से विभक्त किया है और स्वतत्त्व के एकत्व में लगाया है;—यही शुद्धनय है, यही शुद्धात्मा की उपलब्धि है, यही निर्वाण का मार्ग है, और यही महान अतीन्द्रिय सुख॥ 'जय महावीर'

अहो, चैतन्यतत्त्व इस जगत में सर्वोत्कृष्ट सुंदर चीज़ है

जहाँ चैतन्यतत्त्व की सुंदरता का अनुभव होता है, वहाँ जगत का कोई भी पदार्थ सुंदर नहीं दीखता, अत: चैतन्य को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी सुखबुद्धि नहीं रहती; सर्वत्र उदासीनभाव रहता है और चैतन्य में ही परम प्रीति रहती है। अहो, धन्य है धर्मी की ऐसी शांतदशा को! यह सहजदशा आनंदरूप है, और इसमें वीरनाथ भगवान का साक्षात्कार है।

—००—

विश्वधर्म

ज्ञानस्वरूप की अपेक्षा जगत के सभी जीव सहधर्मी हैं—समानधर्मी हैं, अत: सभी को साधर्मी समझकर, सभी को ज्ञानस्वरूपी समझकर, किसी के प्रति द्वेष नहीं करना चाहिए। सभी जीवों को ज्ञानस्वरूप समझना, यह वीतरागी विश्ववात्सल्य है।

धर्मात्मा के अंतर में आनंद का उत्सव

[धर्मात्मा की शुद्ध धर्मपरिणति यही मोक्ष का महोत्सव है]

शुद्धोपयोगरूप वीतरागी उपशांतरस की जो आनंदधारा जिनवाणी में बहती है, उसका स्वाद आपको इस प्रवचन द्वारा मिलेगा। मोक्ष का महान उत्सव धर्मात्मा के अंतर में हो रहा है—जहाँ अतीन्द्रिय आनंद के बाजे बज रहे हैं; भेदज्ञान की बिजली चमकती है, सम्यक्तव का धर्मध्वज लहराता है, वैराग्यरस की मधुर अमीवृष्टि हो रही है, चारित्र-भावना के मंगल तोरन बँधे हैं।—आहाहा! कैसा सुंदर है धर्मात्मा के अंतर का महोत्सव! ऐसे उत्सव में भाग लेता हुआ कौन आनंदित नहीं होगा? मोक्षसाधना के मंगल उत्सव में भाग लेने से मुमुक्षु का हृदय आनंदरसभीना हो जाता है। आइए, आप भी इस प्रवचन को पढ़कर आनंदरस का पान कीजिये। (—संपादक)

प्रवचनसार की इस ११वीं गाथा में धर्मपरिणत जीव की बात है। जिसने अपनी स्वानुभूति में राग से भिन्न चैतन्यतत्त्व का अनुभव किया है, अर्थात् राग से रहित शुद्धोपयोगधर्मरूप जो परिणमन कर रहा है-वह जीव, यदि राग से रहित पूर्ण शुद्धोपयोगरूप होता है, तब तो मोक्षसुख को पाता है; और धर्मपरिणतिवाला वही जीव यदि शुभरागसहित होता है, तो स्वर्गसुख को पाता है, मोक्ष को नहीं पाता; अतः शुभराग हेय, और शुद्धोपयोग ही उपादेय है।

यहाँ अकेले शुभरागवाले मिथ्यादृष्टि की बात नहीं है, किंतु जो शुद्धोपयोगसहित धर्मपरिणत है, ऐसे मोक्षमार्गी जीव की बात है; और उसे भी जो शुभराग है, वह धर्मपरिणति नहीं है, किंतु उस राग के समय भी जितना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमन है, उतना धर्म है; उस धर्म का फल अतीन्द्रिय सुख है, वह उपादेय है, प्रशंसनीय है; और शुभराग तो पुण्यबंध का तथा स्वर्ग के भव का कारण होने से उपादेय नहीं है।

देखो, यह 'धर्मपरिणत आत्मा' को मंगल बात है।

आत्मा का जैसा शुद्धस्वभाव है, वैसा जिसकी पर्याय में परिणमित हुआ, वह जीव धर्मपरिणतस्वभाववाला है, उसके शुद्धोपयोग का फल अनंत अपूर्व आह्लादरूप आत्मिक आनंदसहित केवलज्ञान की प्राप्ति है; अतः इष्ट फल देनेवाला वह शुद्धोपयोग प्रशंसनीय है, उपादेय है; और रागपरिणति अनिष्ट फलवाली होने से हेय है।

— जो शुभराग है, वह शुद्धोपयोगरूप धर्मपरिणति से विरुद्ध है; उस शुभरागरूप विरोधी शक्ति से रहित जो शुद्धोपयोगधर्म है, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है।

— और, धर्मपरिणत होते हुए भी, वह जीव यदि शुभरागसहित होता है तो, मोक्ष के साधनेरूप स्वकार्य को वह नहीं कर सकता, परंतु उस राग से तो दुःखदाह जैसा स्वर्ग का भाव होता है।–यद्यपि उस समय भी वह जीव जितनी शुद्धपरिणतिरूप परिणमा है, उतना मोक्षसाधन और इतनी शांति तो उसे विद्यमान ही हैं।

आत्मा ध्याता–ध्यान–ध्येय तीनों की एकतारूप निर्विकल्पदशारूप परिणमा, वह तो साक्षात् धर्म है, उसमें शुभराग का भी अभाव है। अहो, शुद्धोपयोग ही धर्म है, और शुभोपयोग धर्म नहीं है।—देखो! यह वीतराग संत की वीतरागरसझरती स्पष्ट वाणी। वे संत शुद्धोपयोगपरिणति के द्वारा मोक्ष की साधना तो कर ही रहे हैं, उसके बीच में जो राग आता है, उसको मोक्ष में विघ्नरूप समझकर छोड़ना चाहते हैं।

अहो, आत्मा तो वीतरागमूर्ति है; उसकी स्वभावपरिणति वही धर्म है। धर्मात्मा की चैतन्यपरिणति तो शांत होकर अंदर में स्थिर होती है, वह बाहर में नहीं उछलती, और शुभरागपरिणति तो बाह्य में घूमती है, उसमें आकुलता है। राग का कार्य तो बंधन है, और शुद्धपरिणति का कार्य तो मोक्ष है, इसप्रकार दोनों का कार्य एकदूसरे से विरुद्ध है।

शुद्धोपयोग ही मोक्षकार्य करने के लिये समर्थ है; शुभराग तो मोक्ष का कार्य करने के लिये असमर्थ है। मोक्ष के कारणरूप जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र हैं, वे तीनों राग से रहित हैं।

अरे, जिनके तीन कषाय का अभाव होकर उपशमरसमय चारित्रदशा प्रकट हुई है, ऐसे मुनिभगवंतों को भी जब तक संज्वलन का जरा सा शुभराग रह जाता है, तब तक उन्हें मोक्षकार्य नहीं होता; वे मोक्ष के किनारे तक तो आ चुके हैं, परंतु संज्वलन–राग साक्षात्

मोक्षकार्य नहीं होने देता। अरे जीव! धर्मपरिणत मुनिमहात्मा का भी शुभराग मोक्ष का प्रतिबंधक है, तब फिर तेरे राग की तो क्या बात? कोई भी राग मोक्ष से विरुद्ध कार्य करनेवाला है, वह मोक्ष का साधन होनेवाला नहीं। राग को जो मोक्ष का साधन मानता है, उसका वर्तन मोक्षमार्ग से सर्वथा विपरीत है; और राग को जो मोक्षमार्ग नहीं मानता, जो राग से रहित धर्मपरिणतिरूप हुआ है – ऐसे धर्मपरिणत जीव को भी जितना शुभराग है, वह तो मोक्ष के विरुद्ध कार्य करनेवाला ही है।—मोक्ष और बंध के भिन्न-भिन्न कारणों का ऐसा स्वरूप जो पहचानता है, उसे भेदज्ञान व मोक्षमार्ग होता है।

— वह जानता है कि मेरे सम्यक्त्वादि चैतन्यभाव का कोई अंश राग में नहीं है, और राग का कोई अंश मेरे शुद्धचैतन्यभाव में नहीं है। उस ज्ञानी को भेदज्ञान के बल से शुद्धपरिणतिरूप धर्म तो निरंतर वर्तता है, उसमें तो राग होता ही नहीं।

अरे जीव! ऐसे वीतराग जैनधर्म की पहचान तो कर। इसकी पहचान करते ही तुझे तेरे आत्मा में से मोक्षसुख का स्वाद आ जायेगा। जिसने मोक्षसुख का स्वाद चख लिया, वह जीव दु:खदाहरूप राग से कोई भी अंश को उपादेय (अच्छा) नहीं मानेगा, वह तो आनंदरस का अनुभव बढ़ाता हुआ, राग को तोड़कर मोक्ष को पावेगा। ऐसे आत्मा में सदा ही मंगल उत्सव है।

मीठी-मधुर जिनवाणी

भगवान की वाणी मधुर है, परमार्थरसिक जीवों के मन को हरनेवाली है; भगवान की वाणी में चैतन्य की महिमा झलक रही है, उसे सुनते ही परमार्थरसिक जीव मुग्ध हो जाते हैं; वाह प्रभो! आपकी वाणी अलौकिक चैतन्य को प्रकाशित करती है; चैतन्य के निर्विकल्प आनंद का रस पिलानेवाली आपकी वाणी, उसकी मधुरता की क्या बात! उस वाणी का मीठा नाद एकबार भी सुनने से हमारा चित ऐसा मुग्ध हो गया कि अब चैतन्य को छोड़कर किसी भी अन्य पदार्थ में वह नहीं लगता।

श्री वीरप्रभु के द्वारा उपदिष्ट वीतरागविज्ञान का प्रचार
यही महावीर-निर्वाण का सच्चा महोत्सव

वीरवाणी प्रसिद्ध करती है-वस्तु का अनेकांतस्वभाव

[वस्तु परिणामस्वभावी है; परिणाम वस्तु का स्वभाव है]

अनेकांतमय वस्तुस्वभाव दिखानेवाला यह महत्व का प्रवचन जिज्ञासुओं को तत्त्वनिर्णय के लिये बहुत उपयोगी है। अनेकांतमय आत्मस्वरूप का जो निर्णय करते हैं, उन्हें स्व-पर का अत्यंत भेदज्ञान होकर, अपने एकत्वस्वभाव के आश्रय से सम्यक्परिणमन शुरु होता है। श्री मुनिराज कहते हैं कि हे भाई! सर्वज्ञ वीतरागदेव ने जिनशासन में जो वस्तुस्वरूप प्रसिद्ध किया है, उसे तुम जानो! उसके जानने से तुम्हारा ज्ञान वीतरागभाव से खिल जायेगा, और स्वपरिणाम की निर्मल धारा बहने लगेगी। बस, यही महावीर-निर्वाण का सच्चा महोत्सव है; यही वीतराग-विज्ञान का महा आनंदमय फल है, और यही भगवान महावीर का दिखलाया हुआ मोक्षमार्ग है।

ज्ञानसाहित्य द्वारा ऐसे वीतराग-विज्ञान का प्रचार करना चाहिए, यही ढाई हजार वर्षीय निर्वाण महोत्सव में मुख्य कर्तव्य है। बाग-बगीचा, स्कूलें, अस्पताल इत्यादि लौकिक कार्य तो सभी लोग करते ही है, उनमें कहीं महावीर-शासन की विशेषता नहीं है; महावीर शासन की विशेषता तो यह है कि वह अनेकांतमय वस्तुस्वरूप दिखाकर भेदज्ञान तथा वीतरागता करता है, और इसप्रकार मोक्षमार्ग बतलाकर वह जीवों का परम हित करता है। वीर प्रभु के द्वारा उपदिष्ट ऐसा इष्ट-उपदेश स्वयं समझना और जगत में उसका प्रचार करना, यही प्रभु के मोक्षमहोत्सव का सच्चा उद्यापन है। (-संपादक)

[श्री प्रवचनसार गाथा १० के ऊपर पूज्य कानजीस्वामी का प्रवचन]

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो।
दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो अत्थित्तणिव्वत्तो ॥१०॥

इस लोक में परिणाम से रहित वस्तु नहीं होती, और वस्तु से रहित परिणाम नहीं होता।

द्रव्य-गुण-पर्याय में स्थित वस्तु अस्तित्वस्वरूप है।

वस्तु, अन्य वस्तु से भिन्न होती है, परंतु अपने परिणाम से भिन्न नहीं होती। वस्तु का सत्त्व पर से रहित है, किंतु वह अपने परिणाम से रहित नहीं है।

सत् वस्तु में से अपने कोई द्रव्य-गुण-पर्याय को निकाला नहीं जा सकता क्योंकि वस्तु का सत्पना ही द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप है। परिणाम को निकाल देने पर वस्तु का अस्तित्व ही नहीं रहता, क्योंकि द्रव्य से-क्षेत्र से-काल से या भाव से वस्तु अपने परिणाम से भिन्न देखने में नहीं आती।

जो परिणाम है, वह परिणामी-वस्तु को प्रसिद्ध करता है। परिणामी वस्तु अपने परिणाम के बिना नहीं होती। वस्तु स्वयमेव सामान्य-विशेष स्वरूप है। सामान्य से रहित विशेष, या विशेष से रहित सामान्य कभी नहीं होता। एक ही वस्तु के आश्रय से रहे हुए द्रव्य तथा पर्याय, इनको सर्वथा भिन्न मानने से वस्तु का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं हो सकता; अत: परिणाम और परिणामी, ऐसे दोनों स्वरूप से वस्तु को एकसाथ देखो। एक वस्तु का परिणाम तथा परिणामी अन्य वस्तु से तो सदैव जुदे हैं, परंतु अपनी वस्तु से वे भिन्न नहीं हैं, वस्तु स्वयं ही परिणामस्वभावी है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप सत्त्व-यही वस्तु के स्वरूप का अस्तित्व है; वस्तु का वास्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में है, अन्य वस्तु के संयोग में उसका वास नहीं है; अत: संयोग का वियोग होने पर भी वस्तु के अस्तित्व को बाधा नहीं पहुँचती।

— इसप्रकार पर से अत्यंत भिन्न अपने स्वरूप-अस्तित्व का निर्णय करनेवाला जीव, अपने परिणाम को अपने में ही एकाग्र करके, पर के प्रति मोहरूप परिणाम जरा भी नहीं करता हुआ, 'शुद्ध' रहता है। —ऐसा शुद्धपना ही मोक्षमार्ग है। ऐसे मोक्षमार्ग परिणाम में तन्मयरूप से तत्काल मेरा आत्मा स्वयं परिणमित हुआ है, ऐसा धर्मी जानते हैं।

अपने गुण-पर्याय में रहनेवाली वस्तु का परिणाम, परिणामी-वस्तु से भिन्न नहीं है, परंतु एक परिणाम दूसरे परिणाम से भिन्न है; जैसे मिथ्यात्व परिणाम के समय सम्यक्तव परिणाम नहीं था, और अब सम्यक्त्वपरिणाम के समय मिथ्यात्वपरिणाम नहीं है; इसप्रकार परिणामों की एक दूसरे से भिन्नता है। और विशेष सूक्ष्मता से देखने पर एक ही समय में, एक साधक आत्मा में क्षायिकसम्यक्त्व भी है और रागादि भी है; अब उनमें—

❀ सम्यक्त्वपरिणाम तथा रागपरिणाम आत्मवस्तु के बिना नहीं होते, वे दोनों परिणाम आत्मवस्तु के ही हैं।

❀ किंतु उनमें से जो सम्यक्त्वपरिणाम है, वह राग से रहित है, और रागपरिणाम सम्यक्त्व से भिन्न है; इसप्रकार सम्यक्त्व तथा राग, ये दोनों परिणाम एक-दूसरे के बिना रहते हैं, किंतु वे परिणाम वस्तु के बिना नहीं हो सकते।

❀ सम्यक्त्व तथा राग, ये दोनों परिणाम एक-दूसरे से भिन्न हैं, दोनों के कार्य भिन्न-भिन्न हैं, एवं दोनों के स्वाद भी भिन्न-भिन्न हैं। ऐसा भेदज्ञान धर्मी के ही होता है।

हे भाई! सर्वज्ञ वीतरागदेव ने जिनशासन में ऐसा वस्तुस्वरूप प्रसिद्ध किया है, उसे तू जान! इससे तेरा ज्ञान वीतरागभाव से सुशोभित हो जायेगा, तेरे लिये मोक्षमार्ग का द्वार खुल जायेगा; यही महावीर भगवान के निर्वाण का सच्चा महोत्सव है। तेरा परिणामी और तेरा परिणाम, उनमें ही वस्तुस्वरूप की मर्यादा समाप्त हो जाती हैं; इस मर्यादा को तोड़कर परवस्तु के साथ संबंध मत मानना। वीतरागमार्ग में कही हुई वस्तुस्वरूप की मर्यादा का ज्ञान वीतरागता का ही कारण है।

❀ हे जीव! तू अकेले 'परिणाम' को मत देखना।

❀ तेरे परिणाम का संबंध पर के साथ मत मानना।

❀ परिणाम का संबंध परिणामी-वस्तु के साथ जानना।

— इसप्रकार प्रत्येक पर्याय के परिणाम को जानते समय वस्तु को भी लक्ष में रखते रहना; वस्तु में तो ज्ञानानंद शुद्धस्वभाव भरा है। अतः उसको लक्ष में रखने से तेरा परिणाम भी शुद्ध होता जायेगा; आत्मवस्तु ही स्वयं अपने शुद्धपरिणामरूप परिणमन करेगी।

'मेरा परिणाम मेरी वस्तु से होता है'—ऐसा निश्चय करनेवाला जीव स्ववस्तु को लक्ष में रखकर (और परवस्तु से भिन्नता रखकर) परिणमित होने से, उनको अकेला अशुद्ध परिणमन नहीं होता, किंतु सम्यक्त्वादि अनंत गुण में शुद्ध परिणमन होता है।

'जो राग परिणाम है, वह मेरी चैतन्यवस्तु के बिना नहीं है'—इसप्रकार राग के काल में ही साथ-साथ चैतन्यवस्तु को भी देखनेवाले जीव को राग में एकत्वबुद्धि नहीं रहती; उसकी

ज्ञानपरिणति राग से भिन्न होकर, चैतन्यवस्तु में एकत्वरूप परिणमित होती है, और उस ज्ञानचेतना में शुद्धता-वीतरागता-आनंद-सम्यक्त्व वगैरह अनंत शुद्ध भावों का रस वेदन में आता है। यही वीतरागी विज्ञान का महाआनंदरूप फल है; यही महावीर भगवान के निर्वाण का सच्चा महोत्सव है, और यही वीरप्रभु के द्वारा दिखलाया हुआ मोक्षमार्ग है।

वीरशासन के ऐसे वीतरागविज्ञान का ज्ञानसाहित्य द्वारा प्रचार करना, यही ढाई हजार वर्षीय निर्वाण महोत्सव में मुख्य कर्तव्य है। बाग-बगीचा, स्कूलें, अस्पताल इत्यादि लौकिक कार्य तो सभी लोग करते ही हैं, उनमें कहीं महावीर शासन की विशेषता नहीं है; महावीर शासन की विशेषता तो यह है कि वह अनेकांतमय वस्तुस्वरूप दिखाकर भेदज्ञान तथा वीतरागता कराता है, और इसप्रकार मोक्षमार्ग बतलाकर वह जीवों का परम हित करता है। वीरप्रभु के द्वारा उपदिष्ट ऐसा इष्ट उपदेश स्वयं समझना और जगत में उसका प्रचार करना, यही प्रभु के मोक्षमहोत्सव का सच्चा उद्यापन है।

भगवान महावीर परमात्मा ने जैसा वस्तुस्वभाव कहा वैसा इस प्रवचनसार में कुन्दकुन्दस्वामी ने प्रसिद्ध किया है, और उसकी पहचान से वीतराग-विज्ञान होता है। ऐसा वस्तुस्वभाव लक्ष में रखकर ही सभी शास्त्रों का तात्पर्य समझना चाहिये। ज्ञानतत्त्व के निर्णयपूर्वक ज्ञेयतत्त्वों का ज्ञान प्रशमरूप वीतरागी शांति का कारण है।

अनेकांतमय वस्तु नित्य-अनित्यस्वरूप है; यह वस्तु न तो अकेले परिणाम जितनी है, और न सर्वथा कूटस्थ ही। अपने विद्यमान परिणाम के साथ वस्तु तन्मय होकर परिणमित होती है। नित्य टिकना एवं परिणमन करना-ऐसे अनेकांतस्वभाव से सत् वस्तु विद्यमान है।

रागपरिणाम या ज्ञानपरिणाम-वे आत्मवस्तु से भिन्न नहीं है। परिणाम यहाँ, और वस्तु कहीं अन्यत्र, ऐसी जुदाई द्रव्य से-क्षेत्र से-काल से या भाव से देखने में नहीं आती। परिणाम का आधार वस्तु है, अन्य कोई नहीं।

परिणाम है, सो कार्य है; वह कार्य, बिना कारण नहीं होता;—वह कारण कौन ? कि वस्तु स्वयं ही उस काल में उस कार्य का कारण है, अन्य कोई नहीं। अन्य की विद्यमानता अन्य में है, इस कार्य में (सम्यक्त्व में या मिथ्यात्व में) अन्य की विद्यमानता नहीं है, अन्य से इसकी अत्यंत भिन्नता है।

देखो, यह वस्तु स्वरूप का महान सिद्धांत है। एक जीव ने केवली-श्रुतकेवली भगवान के सान्निध्य में क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट किया। अब देखना है कि उस जीव के क्षायिक सम्यक्त्व का आधार कौन है ?—जिसका वह परिणाम है, वही उसका आधार है। उस क्षायिक सम्यक्त्वरूप वह आत्मा स्वयं परिणमित हुआ है, अतः उसका कारण तथा उसका आधार वही आत्मा है, अन्य केवली या श्रुतकेवली इस जीव के परिणाम का न आधार है, न कारण। उसीप्रकार कोई मिथ्यात्व परिणाम से परिणमित जीव में भी उस परिणाम का आधार उस समय वह जीव स्वयं है, अन्य कोई कर्म वगैरह उसका आधार नहीं है। हे जीव! तेरे परिणाम के साथ तुझे तेरी स्ववस्तु को देखना चाहिये, तेरे परिणाम के लिये तुझे अन्य की ओर देखकर पराधीन होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

वाह! देखो, यह भगवान का स्वाधीन मार्ग! स्वाधीनता का यह सिद्धांत जगत के सभी जड़-चेतन पदार्थों में, एवं शुद्ध-अशुद्ध परिणामों में लागू होता है। यह एक ही सिद्धांत अच्छी तरह समझ लेने से उपादान-निमित्त का, कारण-कार्य का, निश्चय-व्यवहार का सब समाधान हो जाता है। जीव के शुद्धपरिणामरूप धर्म को तो देव-गुरु करे, तथा जीव के अशुद्ध परिणाम को पुद्गल कर्म करे-ऐसा देखने में नहीं आता; जीव के उस समय के जो शुद्ध या अशुद्ध परिणाम हैं, वह देव-गुरु से या कर्म से तो भिन्न ही देखने में आता है, किंतु अपनी आत्मवस्तु से वह परिणाम भिन्न देखने में नहीं आता। वस्तु के परिणाम का संबंध वस्तु के साथ है, पर के साथ नहीं। द्रव्य-पर्याय के भेद से देखने पर, द्रव्य सो द्रव्य है, पर्याय सो पर्याय है, परंतु ये द्रव्य-पर्याय दोनों धर्म एक ही वस्तु के हैं, वस्तु से वे भिन्न नहीं है; क्योंकि द्रव्य से-क्षेत्र से-काल से या भाव से वस्तु और उसका परिणाम जुदे नहीं हैं। ('वस्तुनो द्रव्यादिभिः परिणामात् पृथक् उपलभ्य अभावात्...' प्रवचनसार, गाथा १० टीका)

वस्तु के सिद्धांत की यह कुंजी सर्वत्र लागू करके समझने से सर्व प्रश्नों का समाधान होकर के स्व-पर का भेदज्ञान होता है। कोई भी परिणाम हो—वह किसका ? - कि वस्तु का स्वयं का; अतः उसका संबंध पर के साथ न रहा, वस्तु के साथ ही रहा।

—इसप्रकार परिणाम के साथ परिणामी वस्तु को देखने से आत्मा दिखता है, और अन्य वस्तु के साथ कर्ताकर्म की मिथ्याबुद्धि नहीं रहती। वीरमार्ग में कहे हुए ऐसे वस्तुस्वरूप

की पहचान जिसने की, उसने भगवान महावीर को पहचाना, और उसने महावीर भगवान का २५००वाँ निर्वाण महोत्सव सम्यक्‌रूप से अपने आत्मा में मनाया।

राजा श्रेणिक का जीव इस समय (नरक में भी) क्षायिक सम्यक्त्व के परिणामरूप से परिणमित हो रहा है, वहाँ उसके क्षायिक सम्यक्त्व के परिणाम का आश्रय स्वयं उसका आत्मा है, केवली या श्रुतकेवली की निकटता के बिना भी उसका क्षायिक परिणाम प्रतिसमय स्ववस्तु के आश्रय से हो ही रहा है। यह परिणाम परवस्तु से तो भिन्न है, परंतु स्ववस्तु से (द्रव्य से-क्षेत्र से-काल से या भाव से) भिन्न नहीं है। वस्तु और उसके परिणाम को प्रदेशभेद नहीं होता, कालभेद भी नहीं होता। उस-उस काल का परिणाम उस समय वस्तु से तन्मय है, किंतु उसके अतिरिक्त आगे-पीछे के परिणाम में वस्तु अभी नहीं वर्तती, अतः 'तत्काल तन्मय' कहा है। (प्रवचनसार गाथा ८)

वस्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में बसी हुई है; उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप से उसका अस्तित्व है; वस्तु का सत्‌पना अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व से या द्रव्य-गुण-पर्याय से पृथक् नहीं होता। उस-उस समय का द्रव्य-गुण-पर्याय, या उत्पाद-व्यय-ध्रुवता, ये सब मिलकर वस्तु ही है, एक ही वस्तु उन सभी स्वभावों में सत्‌रूप से समायी हुई है; ऐसा गंभीर अनेकांतमय वस्तुस्वभाव महावीर शासन में प्रकाशित है।

* जय महावीर *

—०००—

संक्षिप्त-समाचार—

अभी दसलक्षण महापर्व समस्त जैनसमाज में आनंद के साथ पूर्ण हुआ। अनेक जगह से उसके संबंध में समाचार आ रहे हैं।

* **खेरागढ़** में सिद्धचक्रवधिान-महानपूजन सहित एवं रत्नत्रय व्रत के उद्यापन सहित दसलक्षणपर्व आनंद से संपन्न हुआ। विद्वानों के प्रवचनादि कार्यक्रमों में भी बहुत लोगों ने उत्साह से भाग लिया। सिद्धचक्रविधान सेठश्री खेमराज दुलीचंद की ओर से हुआ था।

* **बरायठा तथा शाहगढ़** (सागर) से भी जैनसमाज का पत्र है; समाज ने उत्साह से प्रवचनों का लाभ लिया।

श्रावक के आचार

[५]

सद्गृहस्थ जैनश्रावक का जीवन कैसा सुंदर धार्मिक आचार से सुशोभित होता है, उसका यह वर्णन है। उसके मूल कर्तव्यरूप सम्यक्त्व की महिमा, तथा सम्यग्दर्शन के उपरांत उसे अहिंसादि व्रत कैसे होते हैं? उनका वर्णन गतांक में आपने पढ़ा; शेष भाग इस लेख में समाप्त होता है। सकलकीर्ति-श्रावकाचार के आधार से यह लिखा गया है। (इस लेखमाला का तीसरा लेख शरतचूक से छूट गया है, वह आगामी अंक में सुविधा के अनुसार दिया जायेगा।) (संपादक)

[पंद्रहवें अधिकार के प्रारंभ में पंद्रहवें जिन (धर्मनाथ) को नमस्कार किया है।]

ब्रह्मचर्य नामक चतुर्थ अणुव्रत के धारक श्रावक को परस्त्री का सर्वथा त्याग होता है। अपनी स्त्री से अतिरिक्त अन्य समस्त स्त्रियों को जो माता तुल्य समझता है, उसे स्थूल ब्रह्मचर्यव्रत है। ऐसे ब्रह्मचर्य का सेवन करके विषयों से विरक्त होना चाहिए। विषयों किम्पाक-फल की तरह दुःखदायक हैं। बुद्धिमान पुरुषों को एक क्षण के लिये भी परस्त्री का संसर्ग नहीं करना चाहिए। अरे, इस लोक में प्राण को हरनेवाली क्रोधित सर्पिणी का आलिंगन करना अच्छा है किंतु दोनों लोक को बिगाड़नेवाली परस्त्री का आलिंगन करना ठीक नहीं है; वह महानिंद्य कार्य है और दुःख देनेवाला है। मूर्ख लोगों को परस्त्री की प्राप्ति तो हो या न हो, परन्तु परस्त्री की इच्छा या चिंतन मात्र से उन्हें महान पाप तो लग ही जाता है। उनको सदा मरण की आशंका रहा करती है। उन मूर्खों की बुद्धि नष्ट हो जाने के कारण, परस्त्रीसेवन में दुःख होने पर भी वे उसमें सुख मानते हैं; उनका चित्त सदा कलुषित रहता है। अरे, विषयों में मग्न जीवों को तो शांति कहाँ से मिले? परस्त्री सेवन के तीव्र पाप से नरक में जानेवाले पापी जीव को वहाँ के परमाधमी देव लोहे की धकधकती पुतली से भिड़ाते हैं—जिससे वह जलकर बहुत दुःखी होता है।

विषयों के सेवन से कामाग्नि कभी शांत नहीं होती, वह तो ब्रह्मचर्यरूपी शीतल जल से ही शांत होती है। जो अधमपुरुष कामज्वररूपी रोग को परस्त्रीरूपी औषध से मिटाना चाहता है, वह तो आग को बुझाने के लिये तैल डालने जैसी मूर्खता करता है। अरे, हलाहल विष खा लेना अच्छा, अग्नि में जल जाना अच्छा, समुद्र में डुब जाना अच्छा, तथा पर्वत से गिरना अच्छा, परंतु शील में रहित जीवन मनुष्य को अच्छा नहीं होता। अत: हे भव्य! हृदय में वैराग्य को धारण कर तुम अपने आत्मा को शीलव्रत से सुशोभित करो, और परस्त्री का सर्वथा त्याग करो।

धर्म का आचरण करनेवाला प्राणी कदाचित् हीन जाति का हो तो भी शोभा पाता है और स्वर्ग में जाता है; परंतु पाप का आचरण करनेवाला धर्महीन प्राणी कहीं भी शोभा नहीं पाता, वह तो दुर्गति में जाता है। शील से रहित विषयासक्त प्राणी जीता हो तो भी मृतक के समान है, क्योंकि जैसे मृतक में कोई गुण नहीं होता, वैसे शीलरहित जीव में भी कोई गुण नहीं होता।

जो मूर्ख प्राणी स्वस्त्री को छोड़कर परस्त्री का सेवन करता है, वह अपनी थाली का उत्तम भोजन छोड़कर चांडाल के घर का उच्छिष्ट खाने को जाता है; ऐसा समझकर हे मित्र! तू स्वस्त्री में संतोष कर, और बाद में हमेशा के लिये स्त्रीमात्र का त्याग कर दे। जो विद्वान एकाग्रचित्त से शीलव्रत का पालन करता है, उसके ऊपर मुक्तिस्त्री प्रसन्न होती है। एक दिन का भी ब्रह्मचर्य पालन करनेवाला जीव नवलाख जीवों की हिंसा से अपने को बचाता है। उसी तरह स्त्रियों में भी जो स्त्री शीलरूपी आभूषण धारण करनेवाली है, वह जगत में शोभती है, वह प्रशंसनीय है। वह शीलवान प्राणी धन्य है कि जिसका उत्तम शीलभंडार इंद्रियचोर के द्वारा चुराया नहीं गया। अनेक उपद्रव होने पर भी (सुदर्शन, सीताजी आदि की तरह) जो अपने शीतधर्म को नहीं छोड़ता, वह धर्मात्मा प्रशंसनीय है। अधिक क्या कहें? हे मित्र! तू शीलधर्म का सर्व प्रकार से पालन कर।

* शीलव्रत के प्रभाव में प्रसिद्ध नीलीबाई की कथा *

नीली का पिता जिनदत्त शेठ, वह जिनधर्मी था, और जैनधर्मी के सिवाय अन्य को अपनी पुत्री नहीं देता था। उसी गाँव के समुद्रदत्त शेठ का पुत्र सागरदत्त, एक बार नीली का रूप देखकर मोहित हो गया और उसके साथ लग्न करने की इच्छा की; किंतु वह सागरदत्त जैनमत

का द्वेषी, विधर्मी होने से जिनदत्त सेठ उसके साथ नीली का लग्न करने को तैयार नहीं था। तब सागरदत्त ने मायाचार से जैनधर्म अंगीकार करने का ढोंग किया और श्रावक जैसा आचरण करने लगा। इससे जिनदत्त ने ऐसा समझकर कि, 'सागरदत्त ने मिथ्यामार्ग छोड़कर जैनधर्म अंगीकार कर लिया'—अपनी पुत्री नीली का उसके साथ विवाह कर दिया।

लग्न का प्रयोजन सिद्ध होते ही सागरदत्त फिर से कुमार्गगामी बन गया, और नीली को भी उसके पिता के घर जाने से रोक दी। इससे जिनदत्त सेठ को बड़ा पश्चात्ताप हुआ... ऐसा दुःख हुआ मानों अपनी पुत्री कुए में पड़कर मर गई हो! सच है, पुत्री का कुएँ में गिरने की अपेक्षा, मिथ्यात्व का सेवन करनेवाले मूर्ख के साथ उसका विवाह होना अधिक बुरा है, क्योंकि मिथ्यात्व के सेवन से अनेक भव में जीव का अहित होता है। अपनी पुत्री को कुधर्म में देनेवाला उसका बहुत अहित करता है, उसे जैनधर्म का प्रेम ही नहीं है।

नीली को भी इस बात का दुःख हुआ; किंतु वह स्वयं दृढ़तापूर्वक जैनधर्म का पालन करती रही। सत्य है—जिसको जैनधर्म का सच्चा रंग लगा है, वह किसी भी प्रसंग में उसका सेवन नहीं छोड़ता।

नीली के ससुर समुद्रदत्त ने सोचा कि शायद हमारे गुरुओं के संसर्ग से नीली अपने जैनधर्म को छोड़ देगी और हमारे धर्म को अंगीकार करेगी। ऐसा सोचकर उसने अपने भिक्षुकों को भोजन के लिये घर पर बुलाया; परंतु नीली ने युक्ति से परीक्षा करके उनको अज्ञानी सिद्ध किया।

अपने भिक्षुओं का ऐसा अपमान देखकर, समुद्रदत्त के परिवार के लोग नीली के प्रति द्वेषबुद्धि रखने लगे और अनेक तरह से उसे हैरान करने लगे। उसकी नणदी ने तो उसके ऊपर परपुरुष के साथ व्यभिचार का घोर कलंक लगाया... और यह बात सर्वत्र कहने लगी। अरे रे! निर्दोष शीलवंती नीली बहिन के ऊपर पापकर्म के उदय से ऐसे महान दोष का झूठ कलंक आया।

नीली तो धैर्यपूर्वक जिनमंदिर में जाकर भगवान के सामने बैठ गई, और ऐसी प्रतिज्ञा कर ली कि यह कलंक दूर होगा, तब ही मैं भोजन करूँगी, अन्यथा शांतिपूर्वक अनशन व्रत को धारण कर समाधिमरण करूँगी। ऐसी प्रतिज्ञा करके जिनेन्द्रदेव के सन्मुख बैठी हुई नीली अपने अंतर में जिनगुणों का स्मरण-चिंतन करने लगी।

—किंतु, शीलवंती नारी के ऊपर का कलंक कुदरत से कैसे देखा जाये ? उसी समय उसके शील के प्रभाव से नगररक्षक देव वहाँ आ पहुँचा, और नीली से कहा—हे महासती ! तुम अपने प्राणों का त्याग नहीं करना; सुबह होते ही तुम्हारा कलंक दूर हो जायेगा; अतः तुम चिंता मत करना। उस देव ने राजा को भी स्वप्न में एक बात की।

बस, रात हुई और नगर का दरवाजा बंद हो गया।

सुबह होते ही बड़ी मुसीबत खड़ी हो गई... नगर का दरवाजा ऐसा जकड़बंद हो गया कि किसी भी उपाय से वह खुला नहीं। नगररक्षक घबड़ाया हुआ राजा के पास आया और सब बात की। राजा को भी रात्रि के समय स्वप्न आया ही था—जिसमें देव ने कहा था कि सुबह होते ही नगरी का दरवाजा बंद हो जायेगा, और जब किसी शीलवती स्त्री का चरण लगेगा, तभी वह खुलेगा।—राजा ने यह बात सारी नगरी में प्रसिद्ध कर दी।

अनेक स्त्रियाँ आई किंतु दरवाजा तो न खुला। अंत में राजा की आज्ञा से, मंदिर में से नीलीबाई को बुलाई गई। नमस्कार मंत्र का जाप जपती हुई नीलीबाई आ पहुँची और उसके चरण का स्पर्श होते ही दरवाजा खुल गया। नीली के शील का ऐसा प्रभाव देखकर सर्वत्र जयजयकार होने लगा और उसका कलंक दूर हो गया। सागरदत्त आदि ने भी प्रभावित होकर उससे क्षमा मांगी तथा सच्चे भाव से जैनधर्म का स्वीकार करके अपना हित किया।

इसके बाद शीलव्रती नीलीदेवी संसार से विरक्त होकर आर्यिका बन गई और अंत में राजगृही में समाधिमरण किया। वहाँ पर आज भी एक स्थान 'नीलीबाई की गुफा' के नाम से प्रसिद्ध है—जो जगत को शील की महिमा दिखा रहा है।

उसीप्रकार महासती सीता के भी शीलरत्न के प्रभाव से, अग्निकुंड भी कमल का सरोवर बन गया था–यह बात जगप्रसिद्ध है।

धर्मात्मा सेठ सुदर्शन की शीलदृढ़ता भी विश्व के लिये एक उत्कृष्ट उदाहरण है। कामदेवतुल्य उसके रूप से मोहित होकर कामांध रागी ने उसे शील से डिगाने के लिये अनेक विकारचेष्टायें की, परंतु शील के मेरु सुदर्शन तो अचल ही बने रहे; अतीन्द्रिय आत्मभावना के अभेद्य किले में रहकर इन्द्रियविषयों के प्रहारों के सामने अपनी रक्षा की। वाह, सुदर्शन !... धन्य आपका दर्शन !

कामांध रानी ने क्रोधित होकर, सुदर्शन सेठ के ऊपर अपना शीलभंग करने का भयंकर झूठा आरोप डाला। दुष्ट रानी ने आरोप तो डाला... किंतु इससे सुदर्शन को क्या? वह तो अडिगरूप से अपनी वैराग्भावना में मग्न रहा; और उसने प्रतिज्ञा कर ली कि यह उपसर्ग दूर होते ही मैं गृहवास छोड़कर मुनि हो जाऊँगा। वैराग्य में लीन उस महात्मा को दुष्ट रानी के ऊपर क्रोध करने का भी अवकाश कहा था?

रानी की झूठ बात को सत्य मानकर राजा ने सेठ सुदर्शन को शूली के ऊपर चढ़ाकर मार देने की आज्ञा कर दी। शील के खातिर प्राणांत होने का प्रसंग आया... भले ही आया... राजसेवकों सेठ को शूली के स्थान पर ले गये... बस, अभी शूली पर चढ़ाने जाते हैं कि—यकायक वहाँ पर शील के प्रभाव से दैवी चमत्कार हुआ... पृथ्वी फटकर शूली के स्थान में सिंहासन बन गया; आकाश में से पुष्प की वृष्टि होने लगी, और जल्लादों के हाथ हवा में ही थम गये।

अरे, यह क्या हुआ?—सभी लोग आश्चर्य में पड़ गये।

आकाश में देवों सेठ सुदर्शन के शील की प्रशंसा करते हुए जयजयकार करने लगे। यह सब हाल देखकर सत्य बात राजा के ध्यान में आ गई; उसने सेठ से क्षमा माँगकर बहुमान के साथ पुनः नगरी में पधारने की प्रार्थना की। परंतु जिसका चित्त संसार से विरक्त हो चुका है, ऐसा सेठ सुदर्शन तो वहीं पर दीक्षा लेकर मुनि हो गया।

मुनि होने के बाद भी उसके शील की अनेक कसौटियाँ हुई परंतु वह अडिग ही रहा, उपद्रव होने पर भी आत्मा की साधना से नहीं डिगा; और अंत में संपूर्ण अतीन्द्रियभाव प्रगट करके, केवलज्ञान पाकर मोक्ष पधारें। पटना शहर में आपका सिद्धक्षेत्र आज भी विद्यमान है—जो कि यात्रिकों को आपका गुणगान सुना रहा है।

हस्तिनापुर का राजा जयकुमार, जोकि भरतचक्रवर्ती का सेनापति था (एवं श्रेयांसकुमार का भाई जो सोमप्रभ राजा उसका पुत्र था), उसके शीलव्रत की भी इन्द्रसभा में प्रशंसा हुई थी; तब एक देव ने आकर उसके शील की कसौटी की थी परंतु वह शील से डिगा नहीं था। उसके शील की महिमा भी पुराणों में प्रसिद्ध है।

और भी अनेक धर्मात्मा शीलवन्त हुए, उन सबकी महिमा कौन कह सके?

कुशील का सेवन करने से जो विषयांध जीव महान दु:ख को प्राप्त हुए, ऐसे पापी जीवों में यमपाल कोटवाल प्रसिद्ध है। उस कामांध ने एकबार रात्रि के समय अनजान में, अन्य स्त्री की जगह आयी हुई अपनी माता से ही भोग भोगा; और इसके बाद इस बात की खबर होते हुए भी, वह दुष्ट-कामांध-पापी जीव प्रतिदिन उसके साथ कुकर्म करने लगा। अंत में राजा को इस बात की खबर पड़ने से उसको भयंकर शिक्षा दी, और वह पापी मरकर दुर्गति में गया। ऐसे पापी विषयलुब्ध जीव नरक में न जाये तो और कहाँ जाये ?

विषयांध राजा रावण भी नरक गया—यह बात प्रसिद्ध है। अत्यंत वैराग्यप्रेरक यशोधर कथा में भी कुशीलवंती विषयांध अमृतारानी का छठी नरक जाने का वर्णन है। इसप्रकार कुशील सेवन के पाप से दुर्गति का महान दु:ख जानकर हे भव्य जीवों! तुम उस पाप को छोड़ो और उत्तम शील का सेवन करो।

अब सोलहवें अध्याय के प्रारंभ में मैं उन सोलहवें शांतिनाथ जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ—जो स्वयं शांतस्वरूप हैं और जगत को भी शांति के देनेवाले हैं।

जो बुद्धिमान-श्रावक लोभ-कषाय को दूर कर, संतोषपूर्वक परिग्रह की मर्यादा का नियम करता है, उसे पंचमव्रत होता है। गृहस्थों को पाप के आरंभ से बचने के लिये परिग्रह का परिमाण करना चाहिये। खेत-घर-धन-धान्य-स्त्री आदि संपत्ति ममत्व बढ़ानेवाली हैं, तथा उनमें त्रस-स्थावर अनेक जीवों की हिंसा होती है, अत: संतोष की सिद्धि के लिये तथा अहिंसा का पालन करने के लिये, हे जीव! तू परिग्रह की ममता घटाकर उनकी मर्यादा का नियम कर। लोभ में आकुलता है, और संतोष में सुख है। संतोषवान जीव जिस पदार्थ को चाहता है, वह तीन लोक में कहीं पर भी हो तो भी उसे प्राप्त हो जाता है। जैसे माँगनेवाले को कभी अधिक धन नहीं मिलता (भिखारी को तो क्या मिले ?) वैसे लोभ से अधिक द्रव्य की इच्छा करनेवाले को उसकी प्राप्ति नहीं होती। निस्पृह जीवों के तो बिना माँगे ही धन के ढ़ेर हो जाते हैं, वैसे संतोष धारण करनेवाले के पुण्ययोग से धनादिक स्वयं आ मिलते हैं। लक्ष्मी का आना-जाना पुण्योदय के अनुसार है, अत: हे जीव! तू लोभ-तृष्णा को छोड़कर संतोषरूप अमृत का पान कर। तथा शक्ति के अनुसार शुभकार्य कर। लक्ष्मी पुण्य से आती है, पुण्यहीन को इच्छा करने मात्र से वह नहीं आती। चैतन्य की निजसंपदा को जानकर, जिसने बाह्य संपदा

का मोह छोड़ दिया है, ऐसे धर्मात्मा को ही इस लोक में तीर्थंकर-चक्रवर्ती या इन्द्र पद की विभूति मिलती है। जो बुद्धिमान श्रावक परिग्रह का थोड़ा भी परिमाण करता है, उसकी परीक्षा करने के लिये बहुत लक्ष्मी सामने चलकर उसके घर आती है। सूर्य में से कदाचित् शीतलता मिल जाये किंतु ममतारूप परिग्रह में से जीव को कभी शांति नहीं मिल सकती। जैसे पशु के नग्न रहने पर भी ममत्वरूप परिग्रह के त्याग बिना उसे शांति या पुण्य नहीं होता, वैसे परिग्रह की मर्यादा का जिसे कोई नियम नहीं—ऐसा धर्मरहित जीव भी शांति या पुण्य को नहीं पाता; परिग्रह की तीव्र मूर्च्छा से पाप बाँधकर वह दुर्गति में रुलता है। धर्मरूपी बाग को खा जानेवाला विषयासक्तमनरूपी हाथी, नियमरूप अंकुश के द्वारा वश में रहता है। अतः हे जीव! तू संतोषभाव से परिग्रह मर्यादा का नियम कर।

परिग्रह के लोभवश जीव न्यायमार्ग को छोड़कर अनेक पाप करता है—दयाहीन होकर असत्य बोलता है, चोरी करता है, आर्तध्यान करता है। तीव्र लोभी मनुष्य को देव-गुरु-धर्म का या पुण्य-पाप का विवेक नहीं रहता, गुण-अवगुण को वह नहीं देखता; कभी लोभवश वह गुणीजनों का भी अनादर कर देता है, और दुर्गुणी जीवों का आदर करता है, देश-परदेश में भ्रमण करता है, माया-कपट करता है; लोभी पुरुष की आशा इतनी गहरी होती है कि सारे संसार का धन मिल जावे तो भी उसकी आशा पूरी नहीं होती, उसका लोभ शांत नहीं होता।

अरे, धन की प्राप्ति अनेक दुःखों से होती है, प्राप्त धन की रक्षा भी दुःख से होती है, और धन के चले जाने से भी दुःख होता है, इसप्रकार सदैव दुःख के ही कारण ऐसे धन की ममता को धिक्कार हो। हे जीव! तू धन का लोभ करने की अपेक्षा धर्म-प्रभावनार्थ उसका दान कर—यही उत्तम मार्ग है। दान से रहित गृहस्थपना तो परिग्रह के भार से दुःख का ही देनेवाला है। लोभ तो पाप का बढ़ानेवाला होने से निंद्य है, और दानादिक शुभकार्य श्रावक के लिये प्रशंसनीय है। अतः हे श्रावकोत्तम! तुम सम्यक्त्व के उपरान्त व्रतों को भी धारण करो; सर्व संगत्यागी मुनिदशा जब तक न हो, तब तक देशत्यागरूप व्रत तो अवश्य धारण करो।

शीलव्रत के उदाहरण में अभी हमने जिसका नाम पढ़ा, वह श्री जयकुमार, इस परिग्रह-परिणामणव्रत के पालन में भी प्रसिद्ध है। जयकुमार को सुलोचना नाम की सद्गुणी स्त्री थी; उसको स्त्रीसंबंधी परिग्रह परिमाण में एकमात्र सुलोचना के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियों का त्याग था।

एकबार वह कैलासयात्रा को गया था; उस समय इन्द्रसभा में सौधर्म इन्द्र ने उसके संतोषव्रत की प्रशंसा की; यह सुनकर एक देव उसकी परीक्षा लेने को आया; उसने विद्याधरी का सुंदररूप बना करके जयकुमार को खूब ललचाया, और अनेक प्रकार से हाव-भाव-विलास करके अपने साथ क्रीड़ा करने के लिये याचना की।

—परंतु 'जयकुमार' जिसका नाम—वह विषयों से पराजित कैसे हो? वह जरा भी नहीं ललचाया, अपितु विरक्तभाव से उस विद्याधरी को उपदेश दिया कि अरे माता! यह बात तेरे को शोभा नहीं देती; सुंदर शरीर का उपयोग धर्म के लिये कर, भोगों के लिये नहीं। मेरे तो एकपत्नीव्रत है, अतः सुलोचना से अतिरिक्त अन्य समस्त स्त्रियों का मेरे त्याग है। हे देवी! तू विषयवासना के बुरे परिणामों को छोड़, और शीलवंती होकर, परपुरुष के साथ रमण की अभिलाषा छोड़।—ऐसा कहकर, जयकुमार तो अपने अंतर में तीर्थंकर भगवंतों का स्मरण करके ध्यानस्थ हो गया। देव के अनेक उपाय करने पर भी जयकुमार ध्यान से न डिगा, सो न डिगा। व्रत में उसकी दृढ़ता देखकर आखिर में देव प्रसन्न हुआ; और प्रगट होकर उसकी स्तुति करने लगा, तथा सम्मान किया। कुछ समय के बाद जयकुमार संसार से विरक्त हो गया, और राजवैभव छोड़कर उसने मुनिदीक्षा ले ली; अंत में आत्मध्यान से केवलज्ञान प्रगट करके मोक्षदशा प्राप्त की।

इसप्रकार परिग्रहपरिमाणव्रत में प्रसिद्ध जयकुमार की कथा की। और इस व्रत से रहित जीव तीव्र लोभ में लीन होकर कैसा दुःख पाता है? उसके लिये श्मश्रु-नवनीत की (अर्थात् लुब्धदत्त की) कथा प्रसिद्ध है—जो कि परिग्रह की तीव्र लालसा से आर्तध्यान सहित मरकर दुर्गति में गया। यह जानकर आरंभ-परिग्रह की मर्यादा करना चाहिये।

हे मित्र! सम्यक्त्व के आठ अंगों का तथा पाँच व्रतों का स्वरूप जानकर उत्साह से उनका पालन करना; मुनिवरों की सदा भक्ति करना और धर्मध्यान में लीन रहना; इससे तुझे स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति होगी।

(इति सम्यक्त्वपूर्वक पाँच अणुव्रत का वर्णन समाप्त)

[दसलक्षण पर्युषण का मंगल प्रसाद]

श्री अरिहंत हमारे देव हैं

उनके आत्मा की पहचान से सम्यक्त्व होता है

श्री प्रवचनसार की ८०वीं गाथा में सम्यग्दर्शन प्रगट करने का उपाय दिखलाते हुए आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि—अरे जीव! तू जैन-परमेश्वर को लक्ष में तो ले। अहो, जैनपरमेश्वर माने हमारे अरिहंत-परमात्मा देव! उनकी महिमा की क्या बात? जिनमें अक्षय-अमेय पूर्ण आनंद भरा है, जिनमें राग का लवलेश नहीं है, और जिनमें अकेला परमशांत चैतन्यभाव परिपूर्ण परिणत हो रहा है,—ऐसे महान सर्वज्ञस्वरूपी भगवान का स्वीकार करनेवाला तेरा ज्ञान भी कितना महान है! वह ज्ञान भी राग से पृथक् होकर अतीन्द्रिय हो जाता है, और वह अपने सर्वज्ञस्वभाव का भी निश्चय कर लेता है; ऐसा करके वह ज्ञान अरिहंतों की पंक्ति में बैठ जाता है, और राग से पृथक् होकर मोक्ष के मार्ग में चलने लगता है।

देख लो, यह महावीर का मार्ग! महावीर भगवान को सर्वज्ञस्वरूप से जो यथार्थतः पहचाने, उसे तो आत्मा के शुद्धस्वरूप की पहचान होकर भेदज्ञान तथा सम्यग्दर्शन हो जाते हैं।—ऐसी दशा जिसने प्रगट की, उसने अपने आत्मा में मोक्ष का मंगल उत्सव प्रारंभ किया। यही सच्चा आनंदमय निर्वाणमहोत्सव है।

सोनगढ़ में अभी हाल के दसलक्षणी पर्व में पूज्य श्री कानजीस्वामी का जो सम्यक्त्वप्रेरक अपूर्व प्रवचन हुआ, वह यहाँ पढ़कर हमारे मुमुक्षु साधर्मी आनंदित होंवेंगे। (संपादक)

मोह की सेना को परास्त करने का उपाय क्या है ? और उसमें भी प्रथम दर्शनमोह को जीतकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की रीत क्या है ? यह बात इस प्रवचनसार की ८०वीं गाथा में आचार्यदेव अलौकिक ढंग से समझाते हैं—

जो जानता अर्हन्त के गुण-द्रव्य अरु पर्याय को,
वो जानता निजआत्म को तस मोह होता क्षय अहो!

अहा, अरिहंतदेव की महिमा अपार है। जिनकी चेतना परिपूर्ण विकसित हो चुकी है, राग-द्वेष का अंश भी जिन्हें नहीं है तथा परिपूर्ण अतीन्द्रियज्ञान, अतीन्द्रियसुख जिनके सर्वात्मप्रदेश में परिणमित हो रहा है, ऐसा शुद्धात्मा ही अरिहंत है। उनके स्वरूप की पहचान से आत्मा के शुद्धस्वरूप की पहचान होती है, और राग से भिन्न अपने शुद्ध आत्मा का स्वरूप भी पहचानने में आ जाता है; क्योंकि निश्चय से अरिहंत और आत्मा के स्वरूप में कोई अंतर नहीं है।

यहाँ मुमुक्षु जीव मोहक्षय के लिये ऐसा कटिबद्ध हुआ है कि, उसने अन्य समस्त कुमार्गों को छोड़कर वीतराग-सर्वज्ञ-अरहंतदेव को ही अपना ध्येय बनाया है, और अरहंतदेव के शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय की पहचान की है; इसप्रकार अरहन्तदेव की पहचान करके वहीं पर (अरहंत के ही लक्ष में) वह रुक नहीं जाता, परंतु अपने आत्मा के साथ उसका मिलान करके, उनके जैसा अपने आत्मा का शुद्धस्वरूप पहचानके अपने आत्मा में उन्मुख हो जाता है, और द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त शुद्धचेतनारूप से अपने को अनुभव में लेकर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है; वहाँ दर्शनमोह परास्त हो जाता है।

ज्ञान और राग की भिन्नता की सिद्धि के लिये यहाँ अरिहंत-सर्वज्ञदेव को ध्येयरूप से रखा है, क्योंकि रागरहित अकेला चैतन्यभाव उन्हें परिपूर्ण प्रगट है; उनके द्रव्य-गुण चेतनामय है और पर्याय भी चेतनामय है—इसप्रकार उनका आत्मा सर्वप्रकार से शुद्ध चैतन्यमय है; उनकी पहचान से आत्मा के शुद्धस्वरूप की पहचान होती है, ज्ञानपरिणति राग से पार अतीन्द्रिय होकर चेतनमय आत्मा की स्वानुभूति करके उसमें अन्तर्लीन हो जाती है, तब अतीन्द्रिय आनंदसहित सम्यग्दर्शन हो जाता है। समस्त अरहंत भगवंतों ने सम्यग्दर्शन की यही

विधि दिखलाई है। उन्होंने स्वयं जिस उपाय से मोह का नाश किया, वही उपाय उपदेश द्वारा हमको दिखलाया। नमस्कार हो उन अरहंतों को!

राग से भिन्न चैतन्यतत्त्व की पहचान करके समस्त मोह का नाश करना है, इसलिये इसके उदाहरणरूप ऐसे सर्वज्ञ अरहंतदेव को सम्मुख रखे हैं कि जिनको अंशमात्र राग या मोह नहीं है; अन्य छद्मस्थ-रागवाले जीव का उदाहरण नहीं लिया है। रागी जीवों की पर्याय में राग को देखकर, अज्ञानी को ज्ञान और राग की भिन्नता की पहिचान नहीं होती; परंतु अरहंत के आत्मा को जानने से, रागरहित शुद्ध चेतनरूप जीवतत्त्व कैसा है ?—वह लक्ष में आ जाता है, तब राग में कहीं एकत्वबुद्धि नहीं रहती; और अज्ञान का नाश होकर भेदज्ञान तथा सम्यक्त्व हो जाता है।

मुमुक्षु जीव, अरिहंत की पहचान के द्वारा रागरहित चैतन्यस्वरूप कैसा है—यह लक्ष में लेकर, अपने आत्मा का भी वैसा ही स्वभाव निश्चित कर लेता है। अहा, चेतनस्वभाव आत्मा में सर्वत्र भरा पड़ा है; द्रव्य चेतन, गुण चेतन, पर्याय चेतन, अकेले चैतन्यस्वभाव का पिण्ड आत्मा, उसमें कहीं राग नहीं समाता। ऐसे अपने स्वरूप को लक्षगत करने से निर्विकल्प अनुभूति सहित सम्यग्दर्शन होता है।

प्रारंभ में, अरिहंत के आत्मा का स्वरूप ज्ञान में लेकर विचार करता है और अपने आत्मा के साथ उसका मिलान करता है, तब तक यद्यपि उस ज्ञान के साथ भेद-विकल्प भी है, तथापि उस समय भी ज्ञान ने तो विकल्परहित चैतन्यस्वरूप का निश्चय किया है, इसलिये तुरंत ही वह ज्ञान, अपने चैतन्यस्वभाव की सन्मुख होकर उसका सम्यक् के अनुभव लेता है; और तब उसमें परलक्ष या द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद का विकल्प नहीं रहता। अज्ञानी को तो अरहंत के आत्मा की भी सच्ची पहचान नहीं होती। जीव जब अरहंत के आत्मा का स्वरूप जानता है, तब वह ऐसा भी जानता है कि मेरे आत्मा का स्वरूप भी परमार्थ से ऐसा ही है; इसप्रकार उसे रागरहित चैतन्यसत्ता का स्वीकार हो जाता है।

अरे, अरिहंत के 'केवलज्ञान है'—उसके 'सद्भाव' का ज्ञान में स्वीकार करते ही 'राग के अभाव का' भी स्वीकार हो जाता है; तब ज्ञान, राग से भिन्न होकर ज्ञानस्वभाव में तन्मय हो जाता है। केवलज्ञान कहो कि आत्मा का ज्ञानस्वभाव कहो, उसके निर्णय में तो वीतरागभाव

का अतीन्द्रिय पुरुषार्थ है। राग से या इन्द्रियज्ञान से केवलज्ञान का निर्णय कभी नहीं हो सकता। जो शुभराग को या इन्द्रियों को ज्ञान का साधन मानता है, उसको भी केवलज्ञान का निश्चय नहीं हो सकता; केवलज्ञान में राग कैसा ? और इन्द्रियों की सहाय कैसी ? ज्ञान के ऐसे स्वरूप का निश्चय करते ही, अपने आत्मा का ज्ञानस्वरूप भी ऐसा ही, राग और इन्द्रियों से रहित है—ऐसा लक्ष होकर जीव को अपने शुद्ध चैतन्यतत्त्व का अनुभव हो जाता है; उसी समय मोह का नाश होकर सम्यग्दर्शन होता है, मुक्ति का दरवाजा खुल जाता है—वाह, अरिहंतों का मार्ग! कितना सुंदर है!!

अरिहंतों का मार्ग तो मोह के नाश का मार्ग है, वही आत्मा के महान आनंद की प्राप्ति का मार्ग है। जो ऐसे अरिहंत के मार्ग की उपासना करता है, उसे अवश्य आत्मा का आनंद मिलता है, और सम्यग्दर्शन होता है।

देखो! आचार्यदेव ने अरिहंत का आदर्श दिखाकर आत्मा का शुद्धस्वरूप अत्यंत स्पष्ट दिखा दिया है। मोह के नाश के लिये अपने साथ में अरिहंतों को रखा है कि—अहो, अरहंत भगवंतों! आपके जैसा ही चैतन्यस्वरूपी मेरा आत्मा है; मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को मैं जब चेतनस्वरूप ही देखता हूँ, तब मेरे में मोह को रहने का कोई स्थान ही कहाँ रहा ? चेतनभाव के आश्रय से मोह केसे रह सकता है ? नहीं रह सकता; अतएव चेतनभावरूप से अपने आत्मा को अनुभव में लेते ही मोह तो निराश्रय होकर नश्ट हो गया। मोह के रहने का आश्रय तो मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष था, परंतु कहीं चेतनभाव तो उसका आश्रय नहीं है। चेतनभाव में तो वीतरागता और परम आनंद है, मोह उसमें नहीं रह सकता। देखो, सम्यग्दर्शन होते ही ऐसा आत्मा स्पष्ट वेदन में आ जाता है।

अरहंत कहो या अकेला ज्ञानतत्त्व कहो, वह परिस्पष्ट है, सोलहवले (सो टंच के) सुवर्ण जैसा शुद्ध है, पूर्ण है, उसमें किसी भी रागादि परभाव का मिलान नहीं है।—ऐसे शुद्धज्ञानतत्त्व को जानते ही आत्मा के परिपूर्ण शुद्धस्वरूप का ज्ञान हो जाता है। अर्हत माने पूज्य; आत्मा का शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही पूज्य है, अर्हत् है, अर्हंत के स्वरूप में और इसके स्वरूप में कोई अंतर नहीं है।

देखो, यह भगवान महावीर का मार्ग! भगवान महावीर के सर्वज्ञस्वरूप को जो वास्तव

में जानता है, उसे अपने शुद्ध आत्मा की पहचान होकर भेदज्ञान तथा सम्यग्दर्शन हो जाता है। जिसने ऐसी दशा प्रगट की उसने अपने आत्मा में मोक्ष का मंगल उत्सव किया; उसने महान आनंद के साथ सच्चा निर्वाण महोत्सव प्रारंभ किया।

जो जानता महावीर को चेतनमयी शुद्धभाव से।
वो जानता निजात्म को समकित ले आनंद से॥

अरे जीव! तेरे जैन-परमेश्वर को लक्ष में तो ले! जैन-परमेश्वर माने अरिहंत-परमात्मा देव। अहो, उनकी महिमा का क्या कहना? जहाँ अक्षय-अमेय पूर्ण आनंद का गंज है, जहाँ राग का लवलेश भी नहीं है, जहाँ अकेला परम शांत चैतन्यभाव परिणत हो रहा है—ऐसे महान भगवान का स्वीकार करनेवाला तेरा ज्ञान भी कितना महान है! - कि वह ज्ञान भी राग से भिन्न होकर अतीन्द्रिय हो जाता है, और अपने सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार कर लेता है। वह ज्ञान तो अरिहंतों की पंक्ति में बैठ गया, राग से भिन्न होकर मोक्ष के मार्ग में चलने लगा।

जिसके 'ज्ञान में' (राग में नहीं किंतु ज्ञान में) सर्वज्ञदेव का स्वीकार हुआ, उसे अब भवभ्रमण नहीं रह सकता; उसका ज्ञान तो स्वोन्मुख हो गया और उसे मोक्ष की साधना का प्रारंभ हो चुका है; अब उसे अनंत भव होने की बात कैसी? जिसे अनंत भव की शंका बनी रहती है, उसके ज्ञान में सर्वज्ञ का स्वीकार हुआ ही नहीं; उसके ज्ञान में (माने अज्ञान में) तो 'भव' ही बैठे हैं, भव से रहित मोक्षस्वरूप भगवान उसके ज्ञान में नहीं आये।—अहो, इसमें तो अंतर्मुखदृष्टि की बहुत गंभीरता है।

भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो—समयसार की इस ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही जीव को सम्यग्दर्शन कहा है; और यहाँ (प्रवचनसार गाथा ८० में), वह भूतार्थस्वभाव कैसा है-यह अरिहंतदेव के उदाहरण से दिखलाया है; जैसे अरिहंत भगवान सर्वतः अर्थात् द्रव्य से, गुण से तथा पर्याय से शुद्ध चेतनरूप हैं, उसमें कहीं राग का संबंध नहीं है; वैसे मेरे आत्मा में भी चेतनरूप से नित्य रहनेवाला जो अन्वय है, सो द्रव्य है; चैतन्य ऐसा जो मेरा विशेषण है, वह गुण है; और चेतनपने के प्रवाह में प्रतिक्षण होनेवाली एकदूसरे से अमिलित जो चैतन्यपरिणति है, वह मेरी पर्याय है; ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों ही एक चैतन्यस्वभावरूप ही हैं।—इसप्रकार तीनों को एक चैतन्यस्वभाव में ही अंतर्हित करके,

भेदरहित अभेद आत्मा को दृष्टि में लेना सो भूतार्थदृष्टि है, और वही सम्यग्दर्शन है। समयसार की ११वीं गाथा या प्रवचनसार की ८० वीं गाथा सम्यग्दर्शन का एक ही मूलभूत उपाय दिखलाती है; ये दोनों गाथायें एक कुन्दकुन्दस्वामी की ही लिखी हुई हैं और दोनों के टीकाकार भी एक अमृतचन्द्रसवामी ही हैं; आचार्य भगवंतों ने सम्यग्दर्शन के गंभीर रहस्यों को खोलकर के समझाये हैं; सभी का तात्पर्य एक ही है।

❀ ❀ ❀

अहो [८] आठ कर्म को [०] शून्य करके सिद्धपद की प्राप्ति हो— ऐसा उपाय आचार्य भगवान ने ८०वीं गाथा में प्रसिद्ध किया है; मोह के नाश का और मोक्ष की प्राप्ति का अमोघ मंत्र जगत को दिया है।

[श्री प्रवचनसार की ८०वीं गाथा पर प्रवचन चल रहा है।]

अरिहंत जैसे अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को चेतनरूप जानकर, बाद में इन तीन भेदों को भी छोड़के, चेतनपर्यायों को एवं चैतन्यगुण को एक चेतनद्रव्य में ही अंतर्गत करके, अभेदरूप एक आत्मा को दृष्टि में लेना, सो सम्यग्दर्शन है—इसी का नाम भूतार्थ का आश्रय है; यही शुद्धनय है, और यही चैतन्यचिन्तामणि की प्राप्ति है। इसप्रकार अरिहंतों के मार्ग में सम्यग्दर्शन का उपाय दिखलाकर भव्यजीवों के ऊपर बहुत उपकार किया है।

सम्यग्दर्शन के अनुभव में द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद की वासना नहीं रहती, भेद अलोप हो जाते हैं, और एक सर्वोपरी चैतन्यतत्त्व प्रसिद्ध होता है।

देखो, मुमुक्षु जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये कैसा उपाय करता है, उसका यह वर्णन है।

मुमुक्षु जीव प्रथम तो अन्य मिथ्यामार्ग को छोड़कर, वीतराग जिनशासन में आया, और अरिहंत-सर्वज्ञपरमात्मा को अपना आराध्यदेव स्वीकार किया; फिर उस अरिहंतदेव के आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों सर्वथा रागरहित, और शुद्धचेतनामय है—उसे पहचानकर अपने आत्मा का उनके साथ मिलान किया; तब चेतनलक्षणरूप अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर राग से तो भिन्नता कर ली; अब अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद में भी नहीं रुकता, परंतु चेतनपर्याय को द्रव्य में ही अंतर्लीन करके अभेद करता है, भिन्न नहीं रखता; उसीप्रकार गुण

को भी द्रव्य में ही अंतर्लीन करके, द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों के अभेदस्वरूप आत्मा में उपयोग को एकाग्रकर निष्कंप-निर्विकल्प अनुभव करता है। बस, उसी क्षण सम्यग्दर्शन हो जाता है और मोह का नाश हो जाता है।

देखो, सम्यग्दृष्टि जीव पर्याय को तथा गुण को आत्मद्रव्य में अभेद करके अनुभव में लेता है; उसमें जिस पर्याय को अंतलीन की गई है, वह शुद्ध है, चैतन्यपरिणतिरूप है, उसमें राग-पर्याय नहीं आती। राग तो चैतन्य की अनुभूति से बाहर रह जाता है; एक पर्याय में स्वभाव और परभाव दोनों की भिन्नता हो गई। पर्याय में जो चैतन्यभाव है, उसको तो चेतनद्रव्य के साथ अभेद कर दिया, तथा रागादि परभावों को चैतन्य से भिन्न जान लिया।—ऐसे उपाय से आत्मा की अनुभूति होते ही, अरिहंत जैसे अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद अपने को भी आ जाता है। यह कोई अलौकिक अद्भुत दशा है। अरिहंत जैसा आत्मा ध्येय में लेते ही इस जीव को भी अरिहंतदेव जेसी दशा का अंश अपने में प्रकट हुआ, इसलिये यह जीव अब अरिहंत का नंदन हुआ, भगवान का पुत्र कहलाया, और तीर्थंकरों के परिवार का होकर उनके मार्ग में चलने लगा।—इसी का नाम है सम्यग्दर्शन।

सम्यग्दर्शन के ध्येय में 'यह द्रव्य' ऐसा भी भेद नहीं है; यह द्रव्य, यह गुण, यह पर्याय—ऐसे भेद अस्त होकर एक सर्वोपरि चैतन्यतत्त्व को जानते ही विकल्पों की क्रिया रुक जाती है और निष्क्रिय चैतन्यभाव प्रगट हो जाता है—यह चैतन्यभाव आत्मा के अनंत गुण से भरा है। अहा, जिसमें द्रव्य-पर्याय का भेद भी नहीं—ऐसी अनुभूति में द्रव्य-गुण-निर्मल पर्याय ये सब अभेदरूप से स्वाद में आ जाते हैं, यही सम्यग्ज्ञान है, यही सम्यग्दर्शन है, यही शांति है, यही समयसार है; धर्म के लिये जो कुछ भी कहा जाये वे सब उसमें समा जाते हैं, क्योंकि उसमें अनंत गुण का रस एकरस होकर स्वाद में आता है। अनंत गुणों का निर्मल परिणमन सम्यग्दर्शन के साथ ही उल्लसित होता है। परंतु 'यह द्रव्य कर्ता, निर्मल परिणाम उसका कार्य, और परिणति का होना, सो क्रिया' ऐसे तीन भेद के विकल्प का वेदन ज्ञान में नहीं आता; ज्ञान का स्वाद विकल्प से पृथक् हो गया है; अतः कर्ता-कर्म-क्रिया के भेद के विकल्परूप क्रिया ज्ञान में नहीं रहती, इस अपेक्षा से चिन्मात्र भाव को निष्क्रिय कहा गया है; परंतु निष्क्रिय का अर्थ ऐसा नहीं कि वहाँ पर परिणति ही नहीं होती।

आत्मा के सत्य स्वरूप का निश्चय करने के लिये, प्रथम तो उदाहरण के रूप में अरहंतदेव का स्वरूप लक्ष में लिया; परंतु ज्ञान में अरहंत जैसे आत्मस्वरूप का निर्णय करने के बाद, अनुभव करने के समय में अरहंत के ऊपर लक्ष नहीं रहता, किंतु अंतर में अपने चैतन्यस्वभाव में उपयोग झुक जाता है, और उस स्वभाव के कोई परम अद्भुत महिमा को जानते ही ज्ञान उसमें ऐसा लीन हो जाता है कि द्रव्य-गुण-पर्याय के या कर्ता-कर्म-क्रिया के भेद का विकल्प भी नहीं रहता, निर्विकल्परूप से चेतना अपने स्वरूप का वेदन करती है और उसी समय अतीन्द्रिय आनंद के वेदनसहित सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। जिस जीव ने ऐसा किया, उसने चेतनमात्र के द्वारा भगवान की सच्ची भक्ति की; अज्ञानी ने ज्ञान के बिना अकेले राग से भगवान की भक्ति तो की, परंतु उसके भव का अंत नहीं आया; और जिसने राग से भिन्न होकर ज्ञानचेतना के द्वारा एकबार भी भगवान की उपासना की, उसके भव का अंत आ गया।

वाह, देखो! कितनी अच्छी बात है! आठ [८] कर्म को शून्य [०] करके, सिद्धपद की प्राप्ति हो जाये—ऐसा उपाय आचार्यदेव ने यह ८०वीं गाथा में प्रसिद्ध किया है; मोह के नाश का तथा मोक्ष की प्राप्ति का आमेघ मंत्र जगत को दिया है।

अहा, एक आत्मा में द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसे तीन प्रकार होते हुए भी, इन तीनों को एक में अंतर्गत करके एकरूप आत्मा की अनुभूति करना—ऐसा अपूर्व अनेकांतस्वभाव, जैनशासन के सिवाय दूसरा कोई नहीं दिखला सकता, और सम्यग्दृष्टि-जैन के सिवाय दूसरा कोई उसे नहीं समझ सकता। यह समझने से सम्यग्दर्शन होता है और मोक्ष का मार्ग खुल जाता है—ऐसा अपूर्व आनंदमय मार्ग जैन-संतों ने जगत को दिखलाया है।

* उसी मार्ग पर चलना, यही है भगवान महावीर का निर्वाणोत्सव। *

अहो, पंचपरमेष्ठी भगवंत! आपको पहिचानकर मैं आपके मार्ग में आया और आपके परिवार का बन गया। धन्य आपका मार्ग! जो आपके मार्ग में आया, वह संसार से छूट गया; संसार के अन्य किसी मार्ग के प्रति वह आकर्षित नहीं होता। आपका मार्ग इतना सुंदर है कि जिसमें पद-पद पर वीतरागता हो छाई है, जिसके सेवन से रत्नत्रय की प्राप्ति होकर अनंत अपूर्व आत्मिकसुख मिलता है... इतना ही नहीं, उसका सेवन करनेवाला आपके जैसा ही बन जाता है।

साधक कहते हैं कि—अहो, मैंने तीर्थंकरों के मार्ग को पहचानकर मोह के नाश का उपाय प्राप्त कर लिया है; मेरा चैतन्यचिन्तामणि मैंने प्राप्त कर लिया है; अरिहंतदेव की पहिचान के द्वारा मेरे आत्मा का भी चेतनस्वरूप मैंने जान लिया है, राग-द्वेष भावों को चेतनभाव से भिन्न जाना है; ऐसे चैतन्यतत्त्व को सम्यक् प्रकार से प्राप्त करके, सब जागृतिपूर्वक (अर्थात् शुद्धोपयोग के द्वारा) राग-द्वेष को भी जब सर्वथा दूर करूँगा, तभी मुझे पूर्ण शुद्ध आत्मा की प्राप्ति होगी।—इसलिये राग-द्वेष को सर्वथा दूर करने के लिये मुझे अत्यंत जागृत रहना योग्य है। मोक्ष के लिये सभी अरहंत भगवंतों ने यही मार्ग दिखलाया है। भगवंतों ने इसी मार्ग से मोक्षप्राप्ति की और जगत के लिये भी इसी का उपदेश दिया। मैंने भी इस मार्ग का निश्चय करके मेरी मति को इसमें स्थिर-निश्चल की है।

* नमस्कार हो तीर्थंकरों को... और उनके मार्ग को *

समाचार-संकलन

[दसलक्षणपर्व संबंधी समाचार अगले अंक में दिया जायेगा। समाचार-प्रेषकों से यह खास सूचना है कि समाचार स्पष्ट अक्षरों में, अत्यंत संक्षेप में ही भेजें-क्योंकि हमें करीब ८० स्थानों के समाचारों को थोड़े ही पृष्ठों में देना है। समाचार भेजने का पता :—

संपादक : आत्मधर्म, सोनगढ़ (सौराष्ट्र-३६४२५०)

— **सोनगढ़** में पूज्य श्री कानजीस्वामी की मंगल छाया में दसलक्षणपर्व आनंदपूर्वक मनाये गये। प्रतिदिन दसलक्षणधर्म के समूहपूजन के बाद दसधर्मों के ऊपर प्रवचन होता था, जिसमें स्वामीजी मुनिभगवंतों की परम महिमा प्रकट करते थे। इसके उपरांत प्रवचन में सुबह के समय प्रवचनसार गाथा ८० के ऊपर बहुत सुंदर प्रवचन हुए—जिनका सार आप इसी अंक में पढ़ेंगे, और आपको सम्यग्दर्शन की अद्भुत प्रेरणा मिलेगी। दोपहर के समय समयसार कलशटीका के ऊपर प्रवचन होते थे।

— **नागपुर** में निर्वाण महोत्सव समिति के द्वारा गतमास में आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन ८ दिन के लिये किया गया था, जिसमें ३५० विद्यार्थियों ने लाभ लिया। तदुपरान्त विद्वानों के प्रवचनों में भी समाज ने हजारों की संख्या में बहुत उत्साह से लाभ लिया। शिरपुर पंच कल्याणक का एवं जैनतीर्थक्षेत्रों का चलचित्र भी प्रदर्शित किया गया। तत्त्वप्रचार के लिये यहाँ की महिला समाज में अच्छी जागृती है। समाज के सभी कार्यकर्ताओं में बहुत उत्साह है।—धन्यवाद!

— **परभणी तथा डोंबीबली** (महाराष्ट्र) के जैन समाज में तत्त्वज्ञान की अच्छी जागृति आ रही है; डोंबीबली में जिनमंदिर तथा स्वाध्यायभवन बनाने का प्रयत्न चल रहा है।

— **सोनगढ़** में महावीर निर्वाणोत्सव (सौराष्ट्र विभागीय कमिटि) तथा तीर्थरक्षा फण्ड के संबंध में गतमास में सभा हुई थी। इस प्रसंग पर अखिल भारतीय दिगम्बर जैन तीर्थरक्षा कमिटि के प्रमुख श्री शेठ लालचंदजी हीराचन्दजी दोशी तथा कारंजा के ब्रह्मचारी श्री माणिकचंदजी चवरे भी सोनगढ़ आये थे और यहाँ का उत्साहपूर्ण वातावरण देखकर प्रसन्न हुए थे। भगवान के निर्वाण महोत्सव के लिये सभी मुमुक्षुओं में बहुत उत्साह है। वर्तमान विकट परिस्थिति में हमें दो बात पर अधिक ध्यान देना है—एक तो वीतरागी साहित्य का छोटी-छोटी

सुगम पुस्तकों के द्वारा (अत्यंत अल्प मूल्य में) घर-घर प्रचार करना है; तथा हमारा कोई भी साधर्मीजन वर्तमान अति विकट आर्थिक परिस्थिति में किसी तरह दुविधा में न रहे, उसका ध्यान रखना है। मात्र बाहरी शोभा के लिये धन के गंज खर्च हो जाये, उससे यह अधिक आवश्यक है कि साधर्मी का संकट दूर करने के लिये उसका उपयोग हो—क्योंकि हमारा सच्चा रिश्तेदार तो साधर्मी है; और धर्म की शोभा साधर्मीजनों से है।

— **वाराणसी-काशी के पंडित श्री फूलचंद्रजी सिद्धांतशास्त्री** - जिनका तत्त्वप्रचार में महत्व का सहयोग है, वे संपादक के पत्र में लिखते हैं कि—''आपने आत्मधर्म द्वारा अपने जीवनकाल में जिनवाणी की ३१ वर्ष तक अपूर्व सेवा की है, इसके लिये आप समग्र जैनसमाज की ओर से कोटिशः धन्यवाद के पात्र हैं। यह कोई अपूर्व पुण्य का उदय है और विशेष क्षयोपशम का लाभ है, जिससे आपको सतत जिनवाणी की उपासना करने का अपूर्व लाभ मिला है। गृहस्थाचार में शुभ आचारपूर्वक निवृत्ति के अपूर्व क्षणों का लाभ विरले भव्य जीवों को मिलता है। यह आपका महान भाग्य है कि आपने पूज्य गुरुदेव के चरणसान्निध्य में रहकर उनके मुखारविंद से निकली हुई जिनवाणी को सम्यक् प्रकार से आत्मसात कर दूसरों को लाभ पहुँचाने में आप समर्थ हुए। आपका पुनित कर्तव्य हो जाता है कि आगे भी आप इस मंगल कार्य को प्रारंभ रखें। यदि आवश्यक समझें तो किसी दूसरे सुपात्र बंधु को अपना सहयोगी बना लें।'' (ली.) आपका फूलचंद्र शास्त्री

(माननीय पंडितजी ने तथा इस पत्र के संपादक ने अनेक मास तक साथ रहकर हीरकजयंती-अभिनंदन ग्रंथ जैसे महान पुस्तक का संपादनकार्य किया है; और परस्पर अत्यंत वात्सल्य प्रेम रखते हैं।)

— मध्यप्रदेश की एक जिज्ञासु बहन लिखती हैं कि—आत्मधर्म में पूज्य माताजी की जन्म-जयंती का वर्णन पढ़कर और प्रवचनसार के प्रवचन पढ़कर हृदय में बहुत आनंद हुआ। कितना सुंदर पंचपरमेष्ठी भगवान का वर्णन आया है! और माताजी की अनुभूति का कितना सुंदर वर्णन है! हृदय गद्‌गद् हो जाता है। धन्य है वह दशा को। आत्मधर्म तो भव्य जीवों को जागृत करने का एक महान औषध है, संतों की चेतनस्पर्शी आत्मा उसमें भरी रहती है; उसमें ऐसा महान चमत्कार है कि पढ़ते ही आत्मा जाग उठता है। संतों की महिमा जगत से निराली है, यह सब चैतन्य का प्रभाव है।

महावीर-परिवार (छह बातों का संकल्पपत्रक)

महावीर भगवान के ढाई हजारवें निर्वाणमहोत्सव में मेरा संकल्प—

— प्रतिदिन जिनमंदिर जाऊँ (- यदि एक मील के भीतर हो।)
— आत्महित के लक्ष से प्रतिदिन आधा घंटा शास्त्र पढ़ूं।
— जैनधर्म के ही सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को मानूं।
— रात्रि के समय भोजन नहीं करूँ (-जल का अपवाद।)
— बिना छना पानी नहीं पीऊँ। — लौकिक सिनेमा नहीं देखूँ।

उपरोक्त छह बातों के पालन का संकल्प कीजिये, और आपका नाम 'महावीर-परिवार' में छापने के लिये (संपादक आत्मधर्म सोनगढ़ सौराष्ट्र) इस पते पर भेज दीजिये।

[महावीर-परिवार में अब तक जो नाम आये हैं, उनकी यादी—]

१ रतिलाल माणेकचंद संघवी, मोरबी
२ शांतिलाल माणेकचंद मेहता, जामनगर
३ प्रकाश मनसुखलाल जैन, कलकत्ता
४ सोनलबेन हसमुखलाल जैन, सुरेन्द्रनगर
५ अतुल हसमुखलाल जैन, सुरेन्द्रनगर
६ सुमनबाई तुकाराम पंत लोखंडे, मुदखेड
७ तुकाराम विश्वनाथराव लोखंडे, मुदखेड
८ सौ. गंगुबाई नारायण राव, मुदखेड
९ सौ. पार्वतीबाई शंकरराव, मुदखेड
१० दतात्रय व्यंकटेश लोखंडे, मुदखेड
११ सौ. मालतीबाई दत्तात्रय लोखंडे, मुदखेड
१२ नयनाबेन बृजलाल महेता, राजकोट
१३ चंद्रीकाबेन बृजलाल महेता, राजकोट
१४ मायाबेन बृजलाल महेता, राजकोट
१५ सुभाष बृजलाल महेता, राजकोट
१६ जसुमतीबेन बृजलाल महेता, राजकोट
१७ शांताबेन छोटालाल शेठ, राजकोट
१८ विश्राम जीबाभाई राठोड, बम्बई-३४
१९ जसुबेन विश्राम राठोड, बम्बई-३४
२० आदेशकुमार जैन, बड़ौत
२१ राकेशकुमार जैन, बड़ौत
२२ प्रकाशवती जैन, बड़ौत
२३ शांताबेन छोटालाल जैन, फतेपुर
२४ चंदीबेन वाडीलाल जैन, निकोडा
२५ शकरीबेन छोटालाल महेता, निकोडा
२६ मगनलाल हरीभाई जैन, वरुडी
२७ जयाबेन मगनलाल जैन, वरुडी
२८ चंपाबेन चंदुलाल जैन, निकोडा
२९ मलया कमलकुमार जैन, जबेरा
३० विनोदकुमार जैन, जबेरा

३१ सोनाबाई जैन, जबेरा
३२ मातेश्वरी केवलचंदजी सिंघई, जबेरा
३३ मातेश्वरी राजकुमारजी चौधरी, जबेरा
३४ मातेश्वरी धन्यकुमारजी चोधरी, जबेरा
३५ मातेश्वरी उदयकुमारजी सिंघई, जबेरा
३६ सतुबेन चुनिलाल जैन, निकोडा
३७ उजमशी प्रेमचंद सोनी, वढवाण
३८ सुमतप्रकाश जैन, शिवपुरी
३९ डुंगरलाल कृषिकार जैन, धनगाँव
४० सोनलबेन प्रविणचंद कोठारी, —
४१ रुपलबेन प्रविणचंद्र कोठारी, —
४२ सोनलबेन नंदलालभाई गांधी, बोटाद
४३ सुखलाल सुधीरकुमार जैन, सागर
४४ मन्नुलाल नन्हेंलाल , सागर
४५ श्रीमती कलावतीबाई, सिलवानी
४६ श्रीमती विमलाबाई, सिलवानी
४७ जयकुमार शांतिलाल गाँधी, भावनगर
४८ लीनाबेन छबीलदास, राणपुर
४९ शांतिलाल गोपालजी पटेल, राजकोट
५० अमृतलाल जेठालाल शाह, जामनगर
५१ शांतिलाल वशरामभाई लाखाणी, चलाका
५२ सुखलालजी, सागर
५३ कुसुमबाई, सागर
५४ सुधीरकुमार, सागर
५५ सुधाकुमारी, सागर
५६ सुशीलकुमार, सागर
५७ मिसरीलाल जैन रावत, सागर
५८ रूपचंदजी, मलकापुर
५९ गुणमाला रतनचंद शाह, सोलापुर
६० रतनचंद सरनाराम शाह, सोलापुर
६१ नवलबेन लाखाणी, राजकोट
६२ अतरसेन जैन, दिल्ली-३२
६३ शांतिलाल ताराचंद शाह, राजकोट
६४ ब्रह्मचारी मेनाबेन जैन, सोनगढ़
६५ मणिलाल मगनलाल, भावनगर

(शेष अगले अंक में)

आत्मधर्म के पाठकों से क्षमा-याचना

मैं पिछले २५ वर्ष से आत्मधर्म के लिये गुजराती लेखों का हिन्दी अनुवाद-कार्य कर रहा था। अब, आत्मधर्म गुजराती के लेखक श्री ब्रह्मचारी हरिलालजी जैन की भावना है कि अपने गुजराती लेखों का हिन्दी अनुवाद वे स्वयं ही करें और हिन्दी आत्मधर्म को सर्वांगसुंदर बनाने हेतु लेखन एवं संपादन में कुछ नवीनता लायें। अतएव प्रस्तुत अंक से उन्होंने हिन्दी आत्मधर्म का अनुवाद एवं संपादन-कार्य स्वयं सम्हाल लिया है। इन वर्षों में आत्मधर्म का अनुवाद-कार्य करते हुए मेरी कोई त्रुटियाँ रही हों तो उनके लिये मैं पाठकों से क्षमा-याचना करता हूँ।

—मगनलाल जैन

—: प्रकाशन विभाग :—

— **मोक्षमार्गप्रकाशक** (हिन्दी) तीसरी आवृत्ति छप चुकी है। श्रीमान् पंडित टोडरमलजी ने यह ग्रंथ रचकर मुमुक्षु जीवों पर बड़ा उपकार किया है। (मूल्य – पाँच रुपये)

— **धर्म की क्रिया :** (ले. रामजीभाई माणेकचंद) दूसरी आवृत्ति (मूल्य २.००)

— **प्रवचनसार :** (काव्यरूप) पंडित वृन्दावनदासजी ने प्रवचनसार की टीका के आधार से यह पद्यरचना की है, बहुत साल के बाद फिर छपी है। (मूल्य २.५०)

— **द्वादशअनुप्रेक्षा :** (कार्तिकेयस्वामी रचित) वैराग्यभाव का यह उत्तम ग्रंथ, आधुनिक जैन साहित्य में सबसे प्राचीन रचना मानी जाती है। दसलक्षण पर्व के समय प्रवचन में इसी ग्रंथ से दसधर्म का स्वरूप पूज्य कानजीस्वामी ने पढ़ा था। अभी फिर छपकर प्रकाशित हुआ है। (मूल्य ४.५०)

— **समयसार-प्रवचन :** (तीसरा भाग : दूसरी आवृत्ति) इसमें गाथा ३४ से ६८ तक के प्रवचन हैं। (मूल्य ५.००)

— **अहिंसा परमो धर्मः :** (ले. ब्रह्मचारी हरिलाल जैन) भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के उपलक्ष में जैनसिद्धांत का सर्वत्र प्रचार करने के लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। दिल्ली कमेटी के अध्यक्ष श्रीमान साहूजी एवं मंत्री श्री भगतराम जैन ने पढ़कर प्रसन्नता व्यक्त की है तथा प्रचार के लिये समाज को प्रेरणा दी है। हिन्दी-गुजराती दोनों भाषा में प्रकाशित। (मूल्य ०.५०)

— ENGLISH JAIN PRIMER : ब्रह्मचारी हरिलाल जैन द्वारा लिखी गई इस पुस्तक की गुजराती-हिंदी-मराठी-कन्नड़ एवं अंग्रेजी पाँच भाषाओं में करीब सवा लाख प्रतियाँ छप चुकी हैं। अंग्रेजी आवृत्ति छह मास में पाँच हजार प्रतियाँ समाप्त हो जाने से दूसरी बार छप रही है। (मूल्य ०.५०)

— **सम्यक्त्वकथा :** (गुजराती मूल्य १.००) **अंजनाचरित्र :** (गुजराती ०.५०)

(पुस्तकों का डाकखर्च अलग समझना)

मंगाने का पता—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)-३६४२५०

रत्नत्रय की उपासना

जैनधर्म में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र सर्वोत्तम तीन रत्न हैं.. वे आत्मा को महा आनंद देनेवाले हैं... उनकी महिमा लोकोत्तर है। रत्नत्रय सभी मुमुक्षुओं का मनोरथ है; चक्रवर्ती भी रत्नत्रय की प्राप्ति हेतु षट्खंड के साम्राज्य को तथा १४ रत्नों को तृणवत् त्याग देते हैं; इंद्रों भी जिसके लिये तरसते हैं। ऐसे रत्नत्रय की प्राप्ति ही जैनशासन का सार है, और वही जैनधर्म है। अरे! ऐसे सम्यक्रत्नत्रय की आंशिक प्राप्ति से भी जीव को मोक्षसुख का स्वाद आने लगता है।

अहा, जिससे जीव को अनंतकाल का मोक्षसुख मिले—ऐसे रत्नत्रय की क्या बात! समस्त जिनवाणी का सार एक ही शब्द में कहा जाये, तो वह है—'रत्नत्रय' समस्त जिनागमों में उसी का विस्तार है। यह रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों ही राग से रहित है; सिद्धांतसूत्रों में तो इन तीनों को 'ज्ञान का परिणमन' कहकर रागरहित दिखायें ही हैं; एवं रत्नत्रय-पूजन की पुस्तक में भी पहली ही पंक्ति में इन तीनों को राग से रहित दिखाकर, फिर इनकी पूजा का प्रारंभ किया है—

'सरधो जानो पालो भाई, तीनों में कर राग जुदाई।'

'सरधो जानो भावा लाई, तीनों में ही रागा नाई।'

(देखो, पंडित टेकचंदजीकृत रत्नत्रयविधान पूजा)

वाह, वीतराग रत्नत्रय के समान जीव की शोभा के लिये सुंदर आभूषण अन्य कोई नहीं है। ऐसे रत्नत्रय से आत्मा को विभूषित करने के लिये समयसार में कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि हे भव्य! दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षपंथ में आत्मा को लगा। जिनभगवंतों ने दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मोक्षमार्ग कहा है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है, क्योंकि वह आत्माश्रित होने से स्वद्रव्य है। जो स्वकीय चारित्र-दर्शन-ज्ञान में स्थित है, वह स्वसमय है—ऐसा हे भव्य! तुम जानो। और ऐसा जानकर तुम भी स्वसमयरूप हो जाओ। संसार में सबसे दुर्लभ रत्नत्रय है, उसका फल केवलज्ञान है।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)